प्रकाशकः—
माता कृष्णा सत्संग
श्री वृन्दावन

द्वितीय संस्करण
सन् १९६३
मूल्य ३)

मुद्रकः—
राकेश चन्द्र उपाध्याय
आगरा पॉपुलर प्रेस, मोतीकटरा आगरा।

समर्पण

अपने गुरु महाराज श्री बाँके बिहारी जी

तथा

परम गुरुदेव गिरधर नागर

दीवानी श्री श्री मीराबाई

के

कर कमलों में

दासी कृष्णा

मेरा नाम बूझ तुम लीजो
मैं हूँ विरह दिवानी ।।
रात दिवस कल नाहि परत है
जैसे मीन बिच पानी ।।

'श्री राधाकृष्ण'

वक्तव्य

गुरु म्हारे दीन दयाल हीरा रा पारखी।
दीनो म्हाने ज्ञान वताये सगति कर साधु की॥

श्री मीरा जी के इस उपदेश से प्रेरा-मीरा जी के उपासक जिस सत्सङ्ग मे विराजते श्री धाम वृन्दावन के उस श्री राधा भवन मे पहुँचा। बेटी कृष्णा का करुणापूर्ण सकीर्तन सुन प्रार्थना की कुछ उपदेश करो-उत्तर मे उन्होंने उंगली से दीवार पर सकेत कर दिया— जहा लिखा था—

(१) तृणादपि सुनीचेन तरोरिव सहिष्णुनाम्।
श्रमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः।

(२) अभिमान सुरापान, गौरव नर्क रौरवम्।
प्रतिष्ठा शूकरी विष्ठा, त्रैयत्यक्त्वा सुखं भवेत्।

(३) *O burn ! that burns to heal*
O burn ! thou pleasant wound

(४) इल्मो वसवु करीओ पार। इक्को अलिफ तुझे दरकार। मैंने विनय की कृपा कर विस्तृत रूप से इन भावो की व्याख्या कर दें— उत्तर मे कुछ विचार के बाद उन्होने पर गुरु श्री मीराबाई की कृपा से प्राप्त—'विरहिनी गोपिका' मुझे दी। उनके आग्रह को 'कि उनके शरारात से पहिले यह पुस्तक न छपे, अति विनय के पश्चात् इस आग्रह को तुडवा कर प्रकाशन की आज्ञा प्राप्त की। उन्होने कहा ''कि यदि यह मुझसी पतिताओ के हाथ ही पडे तो अच्छा है। हम साधन रहित अबलाओ का कृष्ण-दर्शन-लक्ष प्राप्त करने का साधन एक मात्र ''रो रो कृष्ण को पुकारना है।''

मेरी माता श्री श्री रासेश्वरी जी का यही उपदेश है—
हा नाथ ! हर रमण श्रेष्ठ ! क्वासि क्वासि महाभुज ।
दास्यास्ते कृपणाया मे सखे दर्शय सन्निधिम् ॥

और इस अश्रु की प्राप्ति का एक यही मार्ग है कि यदि किसी के जीवन पर किसी वहती प्रेम विह्वला गोपी के अंचल की छाया पड़ जावे तो वह विरह दशा पाकर निहाल हो जावे। बिना गोपी के मिले गोपी भाव दुर्लभ है और यह महान कृपा सन्त चरणरज प्राप्त पश्चात् होती है। सो ही अंचल पसार कहती मुझे मस्तक पर अपनी चरण रज धारण करने दो और मुझ भिखारिणी की झोली श्री राधाकृष्ण-विरह में निकले तप्त अश्रु से भर दो ...."

इतना कहती कहती वह मौन होगई'

यह पुस्तक क्या है ?

विरही दावानल से उद्भूत बिखरी कुछ चिनगारियां ।
निरख प्रिया—प्रियतम के लिये आर्त भरी पुकार ॥
गोपी के कलेजे की टीस आह तड़प .... ॥
श्री राधा भवन की पुष्प वाटिका के बिखरे सुमन ॥
सन्तों की सर्वस्व श्री मीरा जी के उपदेश ॥
राधा कृष्ण प्रेम के अनुपम विचित्र रहस्य का परोक्ष व अपरोक्ष वर्णन ।
प्रेम बाण चुभे हुए हृदय की वेदना का सजीव चित्र ॥
मेरे तमोमय श्यामघन से हृदय में विद्युत सा आलोक ।

इसका विषय—व्यक्तिगत होते हुये भी सर्वजन प्रिय व कल्याणकारी पथ-प्रदर्शक है। श्री वृन्दावन के मधुरतम, मथुरा के मधुरतर द्वारिका के मधुर कृष्ण वैभव प्रवाह, ब्रह्म, आत्मा, परमात्मा के स्वरूप त्रय तथा सत, आनन्द गुण की—जीव—गुरु—भगवान के मिलन व विरह की विलक्षण झांकी है।

"वियोगिनीनामपि पद्धतिं वो नो योगिनो गन्तुमपि क्षमन्ते" का प्रत्यक्ष अनुभव है।

"योग योग हम नाही उद्धव ! से लेकर 'योग वहां रगें रोम रोम श्याम है' तक रपटीले पथ पर निर्भय चाल है, एक साहसी छलांग है, एक उछाल है इस पार से क्षण मे उस पार। इस उपदेश की यही परिपाटी है। सीढियों पर निधड़क सरपट चाल'''''' न गिरने न रपटने का डर।

दिव्य देश, जहां पचम पर पुरुषार्थ रूप श्री राधाकृष्ण चरणारविन्द विराजते है। उसकी उपासना-चलने की एक प्रेम विभोर बालिका का आह्वान। उपदेश कर नही किन्तु अनुकरण कर। सबला के पुष्प का निर्बल अबला की चाह लता से स्फुट होना। मेरे शान्ति मय जीवन मे एक बवडर का उत्थान। अशान्ति की माग के लिये मेरा आकुल हो उठना। दर्द की माग। मीठी टीस का सचार। 'मैं तो बावरी भई री' मीरा जी की पद पद पर न टलने वाली झांकी। मुझ पर तो यह पद असर पडा अपनी आप जाने। वेग से वहती मेरी तरणी को विचित्र कर्णधार दिव्य देश का मिल गया—केवल शब्द द्वारा उपदेश मात्र नही—किन्तु प्यारे की मुस्काती पथ प्रदर्शिका का निमन्त्रण है। मुझे वृन्दावन आ ही पता लगा और पूर्ण विश्वास हो गया, कि प्रसिद्ध किम्वदन्ति कि वृन्दावन मे यमुना पुलिन पर भक्ति क्षुरित नेत्रो से आज भी श्यामा श्याम के दर्शन होते हैं। उस अनुभव को प्राप्त करने का साधन 'रुदद: सुस्वरं कृष्ण दर्शन लालसा' है। कलि काल हत जीवो के कल्याण का एक निर्भय साधन भगवान के लिये रोना ही है। विरहिनी गोपिका ने उसी पथ को मुझे दिखला-गीता व रासपचध्यायी का सार पथ प्रदर्शक रूप से दिये। मेरी जीवन यात्रा सफल हुई। मैं कृतार्थ हो गया। यदि इस उन्माद भरे विरहिनी के गीत को गा सका—रो रो कर वासि कृष्ण की पुकार लगा सका तो इस त्रैताप के पिंजडे से उडकर मेरा जीव पक्षी अवश्य शरीरान्त पर उनके नित्य वृन्दावन की सारिका बनेगा मेरा अटल विश्वास हो गया है और इस विश्वास का मूल यही विरहिनी गोपिका है।

मैंने सुना मात्र था कि थ्योजिफिकल सुसाइटी के स्तम्भ स्वरूप श्री पूज्य राय बहादुर पड्या श्री वैजनाथ जी इस ८४ वर्ष की अवस्था मे

इस विरहिनी गोपिका का गीता की भांति एकान्त में पाठ करते हैं मेरी इच्छा हुई कि उनके नये उपदेश को सुनूं। श्री राधा भवन सत्संग में उनसे उपदेश के लिये जब मैंने प्रार्थना की तब उन्होंने प्रभु की ओर आर्द्र दृष्टि कर हृदय में रो उठे और बोले.—

"भैया ! कृष्ण नहीं मिला। क्या करूं ? कहां जाऊं ? तुम सब चरण रज दो अवश्य मिलेंगे"। फिर रोना और मौन चलते समय बोले "विरहिनी गोपिका" मुझे दे दो।,

यह है परिचय इस श्री राधिका ग्रंथावली के द्वितीय पुष्प का— तीसरा पुष्प "वृन्दावन चन्द्र चकोरी मीरा, 'जैसा नाम वैसे गुण' इसी की तरह श्रीकृष्णाजी की लेखनी द्वारा निकलने वाला है जिसमें मीरा जी के १५० गुजराती पद व भक्ति सिद्धान्तों का श्री मीराजी की जीवनी सहित विस्तृत वर्णन है।

[illegible]

[illegible]।

श्री गीता जयन्ती मार्गशीर्ष सं० २००७

प्रथम भाग

श्याम ! दर्शन दो एक बार !

द्वितीय भाग

तेरी द्वारका नगरी में

तृतीय भाग

फिर श्री धाम !

—जय श्री राधाकृष्ण—

कहानी है—तो भूमिका भी चाहिये—

'राधा कृष्ण प्रेम'—विरहिनी की भूमिका है—'एक आह।' उसका जीवन है 'उनकी चाह—अंत है—आंसू का प्रवाह—!

आँसू—आह से बींध—चाह के सूत्र में गूंथ लेना—माला बन जायेगी—

यह है विरहिनी की कहानी—

स्पष्ट कहूँ तो केवल इतनी—एक पुकार—

श्यामा-श्याम-दर्शन दो एक बार'—

मैं भूल गई—यह व्रज की बात है—

वृन्दावन के वनवासी—स्वामी को ऐसी ही अद्भुत माला बना पहनाते हैं—

क्या पहनाओगी—

कोई आंसू—परमादी पुष्प—माला का मिले—तो दे डालना आंचल पसारे बैठी है—तुम्हारी दासी

माता कृष्णा सत्संग श्री वृन्दावन कृष्णा

[illegible]

गीता जयती

स वत् २००७

ं—ं—ं
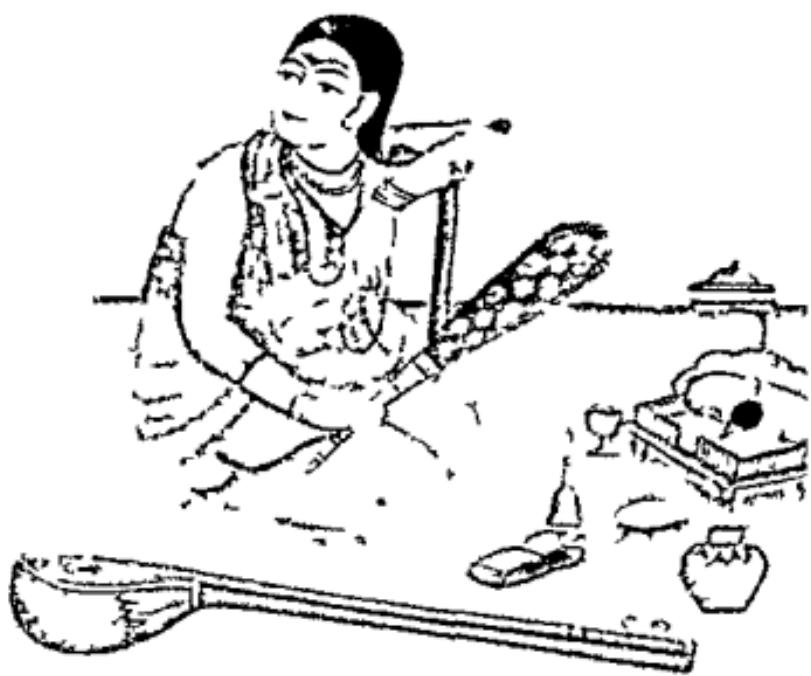
श्याम-दर्शन दो एक बार ?

प्रथम भाग

भई हुँ दिवानी तनु सुधि भूली ।
कोई न जानी म्हाँरी वात ॥
'मीरा कहै वीती सोई जानै ।
मरण जीवन जिन हाथ ॥

मेरी सूनी पड़ी रे सितार ?

प्रिय बहन !

उपदेश तो वह करे, जिसे प्यारा मिल गया हो। उसकी आशा हो। मुझ विरहिनी भिखारिनी को तो रोना और रुलाना ही आता है। यह दोनों सरोवर भी सूख चले और हृदय-कमल कुम्हलाने लगा। यदि वे दीनानाथ दया से प्रेरे इधर आगये और यह जीवित न रहा, तब स्वामी को क्या भेंट करूँगी ?

सो तुम्हारे सामने रख दिया। यदि इन मनोहर कमल नेत्रों से दो बूंद बरसा दोगी, यह सजीव हो जायगा। अपना भाग्य सराहूँगी—

कृष्णा

जय श्री राधा कृष्ण

[१] दुखिया की आह उसका कलेजा छेद गई। पथिक रास्ना चलना भूल गया। आकाश की ओर देख तारा से मूक प्रार्थना करने लगा। बचारे माविक की तरणी भंवर में जा पडी। पतवार हाथों से छूट गई। हृदय में करुणाधार का ध्यान लगा वह बैठ गया।

जीवन एक विकट पहेली है। और वह भी 'प्यारे की विरहिनी' की बडी करुण कहानी है। जिसने प्यारे को प्यार करने की सोची है, जिसने चितचोर की मुसकान चुराने की टेक बांधी है, उसने निरतर का दुख मोल लिया है।

आशा निराशा के समुद्र में उसे सदा गोते लगाना है। हर्षशोक में सम् बरतना है। तड़पना है, सिसकना है और मुँह पर 'आह' न लाना है। कठोर वाक् महन करना है और चेहरे पर बल न आना है। अप्रसन्नता का भाव कदापि प्रकट न करना है। ससार क्या जाने इस शुद्ध सात्त्विक भाव का रहस्य.......... 'कठिन है, महा कठिन है सखि! 'श्याम सुन्दर की प्रीति'.......

और फिर किए जाओ, ऐसे ही इन्तजार। इस प्रतीक्षा की अवधि नही। जिस सन्त से पूछो, बस यही एक मात्र राह बताता है और ठीक भी है। जब प्रेमाभक्ति की वह भिखारिणी पथिका आधी रात में व्याकुल हो करवटें बदलती तारे गिनती, चाद के चारो ओर मडराती चकोरी उसे यही कहती सुनाई पडती थी :—

"कितने निकट फिर भी कितने दूर! स्वामी कैसे पाऊँ—केवल जब तुम ही कृपा करो तो मिलो!"

इतना सुन वह चौंक उठी! प्रियतम के मिलन का मन्त्र मालूम हो गया। 'प्यारा कृपा करें' तभी मिले।

फिर निराशा ने आन घेरा, जब विचार उठा 'कृपा' प्राप्त करने का कोई साधन नहीं बल से वे हाथ नही आते। जप तप-दान से वे रीझते नही। सब ही साधन से वे असाध्य हैं। तो फिर क्या करू? किसी ने मानो कान मे मत्र फूँक दिया 'निर्बल हो बैठ जा!' पर फिर भी वे न आये। पपीहे की पुकार ने भेद बताया। उस अन्ध्यारी रात में उस मधुर विरह की ध्वनि सुन 'मीरा' का राग उसे याद आ गया और वह लगी गाने :—

> मीरा के जीवन की सूनी पडी रे सितार।
> इतनी गहरी नींद में सो गई तारों की झंकार,
> मेरी सखी का गीत अधूरा,
> कौन करेगा रे अब पूरा।
> गिरधर नागर क्या न सुनोगे,
> "पीउ पीउ" की पुकार।

श्याम सुन्दर ....!

सावन की श्याम घटा में; "उनकी खोज"—

आँखों से गङ्गा-यमुना बहती। न सङ्ग न साथी। उस पीताम्बर धारी साधु का आंचल जा उसने पकड़ लिया। और लगी उसको आंसुओं से भिगोने। दर्द भरे स्वर से वह गाने लगी, मीरा का राग :—

'मत जा! मत जा! जोगी, मत जा!
अब में पांव पड़ूं तोरे!
प्रेम नगर को बेडो ही न्यारो,
अब तू गैल बताइ जा।
अगर चंदन की चिता बनाई,
अपने हाथ राइ जा।
मत जा, मत ....
जल वल भई भस्म की ढेरी,
अपने ही अङ्ग रमाइ जा!
मत जा, मत ....

'बस! बेटी बस!!' स्वामी जी का दिल भर आया और वह राग समाप्त भी न होने पाया था कि वे उसके सिर पर हाथ रख बोले—

धीरज धरो! मेरे स्वामी करुणा के सागर हैं। दया के भण्डार है। अवश्य मिलेंगे बेटी! जब मुझ ऐसे कठोर हृदय को तुम्हारी व्याकुलता देख प्रेम उमड़ आया, तो भला उन माखन से कोमल चित्त वाले की क्या दशा हुई होगी! देखो! शान्ति, शान्ति, शान्ति!

सावन की बदरी छाई है। नन्ही नन्ही बूँदो की बौछार हो रही है। ऐसे में वह भी उन्मत्त सी सेवा कुंज की ओर निकल आई। रात अन्ध्यारी थी। पर उसको क्या डर! प्रभु का विरह कैसा बल रखता है, विरही ही जानता है। वह थकी थी, भूखी थी, पर मिलन की व्याकुलता ने सब ओर से उसका चित्त हर रखा था। फिर कैसी भूख? कैसी थकावट? किसका ध्यान!

ज्यों ही कुंज गली में वह घुसी किसी की दर्द भरी यह रागिनी उसके कानों में पड़ी —

मेरी अटरिया है सूनी, मोहन नहीं आये, मोहन नहीं आये।
विरह की पीर भई दूनी, मोहन नहीं आये ?
वर्षा ऋतु सावन का महीना, आवो बिना कैसा जीना!
आवो जी आवो जी!
राह मे नयन बिछाये, मोहन नहीं आये, मोहन नहीं आये!

वह आगे न जा सकी। उसका कण्ठ भर आया। हृदय कम्पित हो उठा इधर हमारी 'विरहिनी' ब्रजाङ्गना का गीत सुन मूर्छित हो गिर पडी। उसके मुखारविन्द से केवल यही सुनाई पड़ा 'मो" ह न? क हाँ ?'

"धम" की आवाज उस गोपिका के कान मे उस शान्त, अन्धयारी में प्रवेश कर गई। आँसू पोछती वह बाहर निकली। देखा एक बालिका मछली की तरह तड़प-तड़प कह रही —मोहन कहाँ! मोहन कहाँ!

उससे वह दृश्य न देखा गया। वह झुकी और उस 'विरहिनी' को जंघा पर लिटा, आँसू पोछ, हवा करने लगी। और कहने लगी—

प्यारी अधीर न हो! प्यारीजू के धाम म सखि! ऐसी व्याकुलता क्यों? और फिर सेवा कुञ्ज के निकट। विश्वास करो वे मिलेंगे, वे मिलेंगे, वे ..... '। अभी बात अधूरी ही थी कि उसका भी कण्ठ भर आया। टप-टप आँसू गिरने लगे। वही पुरानी बात —'वह जो बन म आये थे तभी से खुद मरीज बन गये।'

विरहिनी आँख बिना खोल, गोपिका के गले में हाथ डाल एक मन्द मुस्कान हँस बोली,

'प्यारे! तुम आगए। मेरे केवल मेरे " तुम आगए। श्याम तुम आगए! आओ मुझे कण्ठ से लगा लो! खूब आलिंगन करो, कर लेने दो ! हैं पर यह क्या तुम रोने क्यों हो?

उसने आँख खोल दी। गर्म आह खींची। हृदय कम्पित हो उठा और लगी विलाप करने। दुष्ट आँख तुम क्यों खुली? और मेरे रस को

भग किया। हैं! क्या श्याम न थे? मेरे जीवन प्राण न थे? क्या केवल स्वप्न ही था। निर्दई प्राण! उस स्वप्न ही में क्यों न उनके चरणों पर उपहार बन निकल गये?

यह ससार! माया का ससार! यह घोर घटा। यह कुंज! आग लगे इनमें। बिन श्याम क्या करूँ मैं इनको! पर नहीं, नहीं! प्यारे के रमण का स्थल है। यह सभी प्यारे के मनोरंजन के लिये सेवा में उपस्थित रहते हैं। तुम धन्य हो कुंजो! श्याम घटा तेरा सुहाग सदा बने रहे! प्यार को प्रसन्न करने को उमड उमड आती है।

बहन! जागो! आओ अन्दर चलो। तुम थकी हो। भीग भी गई हो। विश्राम करो। वृन्दावन में इतने कठोर तप की आवश्यकता नहीं। भला हुआ तुम आगई। प्यारे को खोजने आगई। वलिहारी! ओ मेरे जीवन की साथी! इस भारी आयु रूपी घडी को हलका करने आ गई। तुम आगई। विरह की घडियों का रस बढाने को आ गई। धन्य, धन्य! तुम आगई।

आओ गले तो लग जाओ। विरहिन के मिलन की सोभा विचित्र रसमयी है। बढता विरह प्यार के मिलन में प्रतिबन्धक सब ही नाश कर देता है।

प्यारा न मिला। उनकी मर्जी। हमारा कुछ जोर नहीं। हम तो उनकी भोग्य वस्तु हैं। प्यारा जब भी स्वीकार करे। सदा ही आसन लगाये बैठा रहना है।

तुम आगई। प्यारे विरहनी की। प्यार की खोजी। मेरे जीवन के साथी तुमआगई। अनाथों के नाथ अनाश्रिता के आश्रय की तलाश में तुम आगई।

खूब आई। अब तो अवश्य इन नैना से जल की बाढ उमडेगी। न उमडेगी तो प्यारे की नाव इधर कैसे आन लगेगी। गहरे अगाध जल में उन्हे आसानी होगी इधर आने में! प्यारी सहेली खूब रोओ! प्यारे की नय्या इन घाटों पर आन लगेगी। आसानी से। कठिनाई न होगी।

है! हैं! यह क्या? यह कौन?

श्याम! श्याम······ · ·

नही ! नही ! बहन-केवल भ्रम है ।
श्याम घटा है । कितनी दूर है । बहुत दूर—

फिर क्या करूँ ? वह कैसे आयेंगे ? प्यारे का वियोग कैसे सहूँ ? बताओ तुम्हारे बलि जाऊँ बताओ । ब्रज मे रह तुमने उनके मिलने का रहस्य अवश्य जाना होगा । चुप क्या हो ? बोलो प्यारी बोलो ।

[२] रज मे वे लोटती हैं । यमुना मय्या का वह दूध पीती हैं । लताओं मे वे गले मिलती हैं । पक्षियों को वह अपनी विरह कथा सुनाती हैं । ब्रज की बालाये बडी ही भोली होती हैं ।

निस्वार्थ प्रेम की यही पहिचान है । अनन्यता का यही निशान है । यह भोलापन । और हो क्यो न ! श्रद्धा के बल पर, व प्यारे को मिलने निर्बल अपने को जान, चलती है । ब्रज के किस कण ने न जाने प्यारे का चरण परसा हो ! चलो इन कण कण को नमस्कार करती चलें । इस नमस्कार की सुगन्धि उनके दान हृदय कमल की सुगन्धि से मिल ब्रज के वातावरण को कैसा चेतन प्रकाशमय करती है । और करे भी क्यों न !

प्रकाश बिना प्यारा कैसे इधर आयेगा ! और अन्ध्यार जीवन को आलोकित करेगा । स्वय प्रकाश हैं, चिदानन्द स्वरूप हैं । माधुर्य का स्रोत है, ऐश्वर्य का भन्डार है !

हुआ करे ? भले योगी, ऋषि,महात्मा तपीश्वर बडी बडी स्तुति कर उनका आकाश मे चढाया करें ! लम्बी लम्बी दन्डवत कर उनके दिमाग को हवा मे उडाया करें ! करें ! हम क्या ?

यशोदा का लाला, दाऊजी का भैय्या, कन्हैया' हमे यही नाम प्रिय हैं । नन्द को छोरा जब हमारी गोबर की डलिया सहारा दे उठाता ! छलकते गोबर के छींटे उसके लजात मुखारविंद पर पडते हैं । वह मौन शोभा कोई वर्णन तो करे ! जब वशी बजाता गऊ के खुरो से उडी रज अलकावली पर धारण करता आता है, उस माधुर्य का कोई चित्र तो खींचे !

जब कन्हैया चन्द्र के समान अपने ग्वाल बाल रूपी तारागण में

विराज उनके मुख से झपट कर कौर खा लेते हैं, उस दृश्य का कोई वर्णन तो करे ?

जब अपने सखा बंदरों को कन्हैया माखन चुरा चुरा लुटाता है। उस अद्भुत प्यार की लीला को बिना कलेजा कंपित हुए कोई कहे तो सही।

लीलाधारी की लीला रसमय है ! रस पूर्ण है ! उस रस पान की अधिकारिणी केवल भोली गोपिकायें ही हैं।

ऐसी ही एक गोपिका की गोद मे आज भाग्य से विरहिनी आन पड़ी थी। शान्त होने पर श्याम प्यारी व्रजाङ्गना ने स्वाभाविक प्रश्न इस नई वृन्दावन यात्री से पूछा :—"सखि ! तुम कौन हो ?"

[३] "मैं कौन हूँ ?" तुम पूछती हो—कोई योगीराज होते तो उत्तर में 'शिवोऽहं व अहं ब्रह्मास्मि' का पाठ शुरू कर देते। अपने ज्ञानानन्द आनन्दमय, स्वयं प्रकाश, कूटस्थ, नित्य, अप्राकृतिक आत्मस्वरूप पर लम्बी व्याख्या देते। जो न वे ब्रह्मज्ञानी स्वयं अनुभव किये होते और भोली गोपिका के सिर मे दर्द पैदा कर 'अज्ञानी अनाधिकारिणी'' का शाप दे कमण्डल ले व लंगोटी सभाल रास्ते लेते।

पर यह तो एक भोली गोपिका का सान्त्वना देते स्वर मे एक कृष्ण-विरहिनी से स्वाभाविक प्रश्न था।

विरहिनी कुछ ध्यान कर बोली—बहन ! तुम ही न बतादो मै कौन हूँ ? जिसको आज तक किसी ने न अपनाया हो। जिसको दुख तक ने दुराया हो सुख का तो कहना ही क्या ! वह अभागिनी फिर अपना क्या मोल बताये। और बिन मोल की वस्तु की सत्ता ही क्या है। फिर कैसे कहूँ 'मै कुछ हूँ'। किसी की गोद में बैठी होती, यदि किसी ने यह ढलकते आँसू पोछे होते तो मै भी 'कुछ हूँ' अनुभव करती। जिसकी कौणी बराबर कदर नही, वह क्या बताये कौन है ?

फिर बहन ! "मै हूँ" यह मेरा कहना तो किसी तरह भी नही बनता। यदि तुम कहो क्यो ? तो सुनो।

बेनिशान की खोज में निशान रख भी कोई चलता है ? लापते को ढूँढने निकलने पर क्या कोई लेश मात्र अपना पता रख सकता है ? फिर कहाँ से अहंकार लाऊँ, क्या बताऊँ, कौन हूँ.....

श्याम ! श्याम ! श्याम कहाँ हो ? यह कहती विरहिनी मूर्छित हो गोपिका की गोद में फिर गिर पड़ी । आँखो ने दो आँसू टलका प्रश्न का उत्तर द दिया ।

[४] वृक्षों को आलिगन करती, लताओं के कान म कहती 'मैं कौन हूँ ?' उन्मत्त सी एक बालिका यमुना तट पर आन निकली ।

अरुणोदय के समय ! यमुना मय्या की गोद में खेलती सूर्य की किरण विरहिनी की अलकावली से आ उलझी । वह सुनहली अलकावली प्रकाश से जीवित हो उठी । माधुर्य की झर झर वर्षा होने लगी । उसके दोनो नेत्र बन्द थे । बालू पर वह लेटी थी । हाथ का तकिया बनाया । पास कुछ न था । और होना भी क्या ? कृष्ण की खोज और वह भी प्यारी जी के धाम में ! फिर कौन संग्रह स अपनी खोज का कलंकित करने लगा । यदि ससार का आश्रय लेना है, तो प्यार की खोज में जाना क्या । काम व राम एक जगह कब ? सन्त ही इस पथ क पथिक जानते हैं । जब वृन्दावन आन हैं, ससार की होली वाल कर आन हैं । फिर त्रिगुण रूपी बूडा उनकी कृष्ण विरह रूपी अग्नि म ठहरे भी कैसे ?

असार का असार अनुभव कर तब सार की खोज में सच्चा विरही निकलता है । सुनहले ससार के गृह, दारा, सुत, मान, प्रतिष्ठा रूपी खिलौना में खेलते, अमृत रूपी असंसारी प्रभु क दर्शन रूपी छटा का सुख तब तो किसी जन को न देखा । कहते तो बहुतो को सुना, हाँ ! मोह म अस्त हो कहते सुना है 'हमें साक्षात्कार ह ।' कितनो का तो नमस्कार दिखाते भी देखा । ससार में गुरु बनते देखा । पर प्रभु का अनन्य भक्त, मर वासुदेव को सर्व इति अनुभव न करते पाया । जब ही है, ऐसा महात्मा दुर्लभ है ।

जिसका हाल ह—कैसे मानू —उसने इस सदहाल करने वाले का दर्शन किया ? जिसकी बुद्धि दुरुस्त है—कैसे मान लूँ—उसने पागल बना देने वाले मनोहर को देखा है ? इस त्रिगुण माया की किसी वस्तु में जिसकी स्पृहा बाकी है—कैसे विश्वास हो उसने माया म पर, माया को नष्ट करने वाले मेरे स्वामी का दर्शन है ? 'रवि व रजनी कभी न देखी न सुनी एक ठाम' ...।

कितने उपदेश वह न सुन चुकी थी। कितने तीर्थ न छान चुकी थी। कितने गुरुग्रों से कान में मंत्र न फुंकवा चुकी थी। इसीलिये कि कोई उसको प्यारे की राह बतादे। परदश में भ्रमती उस बाला को उसके घर पहुँचा दे।

सब ही तो निष्फल हुग्रा था। जीवन के १८ वर्ष बीत चुके थे। पर स्वामी का पता न चला था। सब ही जगह तो उसे खोजा था। घर में वह न मिला था, तो अब वह बन में उसे खोजने आ निकली थी। सुना था, वृन्दावन कल्पतरु हैं। माया की यहा ररसाई नही। कला का यहाँ प्रवेश नही। कर्म की यहाँ गति नहीं। लता व वृक्ष सब ही तो यहाँ के चेतन है। और फिर श्री रास रासेश्वरी तो करुणा की सागर निर्हेतुक दया की भण्डार है। यह वह सुन चुकी थी। विचार स्वत. उत्पन हो गया था। जहाँ श्री राधा वहाँ श्याम। जहाँ गोपी, तहाँ गोपीनाथ। फिर तो मेरा प्यारा मुझे अवश्य ही रासस्थली मे मिलेगा। यह दृढ भाव ले वह कुञ्ज गली में निकल आई थी। व्रजाङ्गना से भैट हुई थी उसने प्रश्न किया था 'तू कौन ?' कैसे कहती अपने स्वामी की दासी, अपने प्यारे की खोजी, अपने पिता की पुत्री, अपने ठाकुर की पुजारिन हूँ। यदि कहती तो प्रमाण मागने पर अपने हृदय मन्दिर को दिखाती। उस सूना देखकर क्या मेरी सहली हँस न देती। 'हे यह तो सूना है। फिर विना ठाकुर तू कैसी पुजारिन ? क्या पगली है।' उस भोली की ताडना मैं न सह सकती। सो न बता सकती 'मैं कौन' पर बताऊँगी जरूर—उन चरण कमलो की दृढता से पकड आँखो से प्रश्न करूँगी। वे पूछेगे 'प्यारी'। हाँ प्रश्न करो। मै उत्तर दूँगी।' तब मैं कहूँगी स्वामी ! मैं कौन ?' वह लजायगे। मैं हठ करूँगी। फिर पूछूँगी आँखो से उनके आँसू निकल आयगे। मेरी विरह कहानी उनके सामने मूर्तिमान आन खडी होगी। वह मूक हो जायगे। मै जिद करूँगी। लजाते नीची निगाह करते वह केवल एक शब्द कह मूर्छित हो जायगे। कलेजा हो तो सुनो—बताऊँ वह क्या शब्द होगा ? हाँ वह शब्द ऐसा ही है, जिसके सुनने पर जीव जीवित नही रह सकता, भिखारी खोजी के पास उसका मोल देने को नही होता। प्रभु की दयालुता, उनकी महानता, भक्तवत्सलता देख उसके पास अपने स्वामी को उपहार देने को कुछ

नही रहता। सकुचाता वह प्राण-पखेरू भेंट कर सदा के लिए ही उनके चरणों में पहुँच जाता है।

तुम अधीर हो पूछती हो, वह क्या शब्द हैं? अधीरता काम न देगी। परम रहस्य इस तरह जल्दी नहीं कहा जाता। अच्छा दुखी न हो। भक्ति का सबको अधिकार है। जानि कुजानि, पशु पक्षि सबको। ऐसा न होता तो गजेन्द्र की गति कैसे होती? जटायु कैसे परम पद पहुँचता ......

हाँ सुनो बताती हूँ, वह क्या कहेगे। बस एक बार ही कहेंगे। दूसरी बार साहस करने की त्रिलोकपति को भी सामर्थ्य नहीं। ऐसी ही दास के दासत्त्व की महिमा है।

हाँ! सुनो तीसरी बार मेरे प्रश्न "मैं कौन" के उत्तर में विह्वल हो काँपते, आँसू बहाते सिंहासन छोड़ मुझे आलिंगन करते तन की सुधि बुधि बिसरा वह कहेंगे, मेरी—केवल मैं .....।

वह मूर्छित हो मेरी गोद में गिर पड़ेगे। जब आँख खुलेगी और मुझे देखेंगे, मेरी मुस्कान में अपना चित्र लिपटा देख, वाणी से हाल पूछने को उत्सुक हो उसे मूक पा नब्ज टटोलेंगे। उसे गति शून्य देख स्वामी कहेंगे—कौन?

सामने एक विकसित पुष्प पड़ा देख वे उसे आँखों से लगा वक्ष-स्थल पर धारण करेंगे। कोई गोपिका देख पूछेगी 'यह क्या?' वे कहेंगे 'विरहिनी का प्रेम उपहार—

व्रज के पक्षी भी देव वाणी जानते हैं, तभी तो मयूर 'जय जय', कोयल 'व्रजासि कृष्ण' पपीहा 'पी पी', मैना 'राधा-राधा' कह विचरती है। सब उस वाणी को न सुन पाते न समझ पाते। विरहिनी वन जाओ तो वह मग देने को ध्यान उपस्थित होगे। विश्वास करा कहती हूँ।

देखा न! सामने पपीहे विरहिना से पूछ रहा है, 'पी कहाँ—पी कहाँ? और उसकी प्रश्नवाणी को सत्य जान उसम पी-पी पुकार खोजने लगी। नहीं, नहीं! वहाँ भी शान्ति न पा वहीं वे बेसुध पड़ विरहिनी की परिक्रमा लगाने लगी। यदि उस पक्षी को समझ न होती तो उसे

कैसे पता चला कि विरहिनी के हृदय-मन्दिर में उसका, नहीं-नहीं सबका पी छिपा बैठा है। यह न मालूम होता तो परिक्रमा क्यों लगाती।

'तीन वर्ष बाद' नहीं—नहीं प्यारे ! इतने दिन तक बिना दर्शन कैसे जीऊंगी। स्वप्न देखती विरहिनी के मुख से अस्पष्ट शब्द निकल पड़े !.........

वह जागी। चेहरे पर विचित्र सोच व दुख की मिश्रित रेखायें दीख पड़ीं। अपने आप से वह बोली, एक पल जब स्वामी बिना जीना कठिन तो तीन .....

किसी ने पीछे से कन्धे पर हाथ रक्खा। उसने सिर फेरा, सेवाकुन्ज वाले स्वामी जी को फिर सामने देख प्रणाम किया। वे बोले—बेटी ! चिरंजीव ! अब तो मनोकामना पूर्ण हो गई ?

विरहिनी—भड़कती आग में घृत छोड़ने से क्या ज्वाला शान्त होती है ?

स्वामी जी–बच्ची ! लीलाधारी श्याम को आंख मिचौनी भाती है। उनके अनन्य भक्त को न देवी देवता, न गृह-कुटुम्ब, न साधन अनुष्ठान किसी का जब सहारा नहीं रहता, तो प्रभु अपने सदा रहने वाले साक्षात्कार के प्रतिबन्धक प्रारब्ध को, विरह-अग्नि बार-बार धधका-धधका काट देते हैं। कहीं अपने प्यारे का दिल टूट न जाये, आशा निराशा मे परिणित न हो जाये। कर्तव्य त्याग न बैठे, प्रमाद न आन घेरे, इसीलिये प्रोत्साह देने को अपने दर्शन कभी स्वप्न मे, कभी छाया वन, कभी अर्चा मे मुस्करा कर, कभी किसी के द्वारा कुछ कहला कर जनाते रहते हैं कि "मैं सदा तेरे साथ हूँ।' भक्ति को तीव्र रखने का साधन केवल 'श्रद्धा' ही है। अर्थात् सदा अनुभव करना स्वामी मेरे साथ हैं।' ज्यों ही यह भाव दृढ हुआ और यह श्रद्धा तब ही दृढ होती है, जब अनादि काल की कर्म-जनित वासना रूपी पाप भजन से क्षय हो जाते हैं तब।

विरहिनी—यदि वे भजन से मिलते है, तब तो मुझे निराशा के सिवाय और है ही क्या। मुझमे तो भजन होता ही नहीं।

स्वामी जी—सर्वोत्तम भजन है 'विरह'। और तुम तो साक्षात्

[५] मंत्र में बड़ी शक्ति होती है। गायत्री का जाप कर कितने आज सिद्ध बन यश बटोरते व चमत्कार दिखाते नहीं फिरते। भजन का बड़ा प्रभाव होता। नाम जप कितने शक्तिमान बन आज मठ व आश्रम बना चेले मूँडते व अपने पर तुलसी, पुष्प चढवाते। यह सकाम उपासक तो सफा कह देते हैं; क्या रक्खा है 'दास' बनने में, जो मजा हमने देखा ब्रह्म बनने में। यह दण्डवतों की बौछार देख कैसा मन फूलता है। थोडे से दिन तप करो अनुष्ठान कर देवी-देवता साध लो फिर करो मजे! आगे की कौन परवाह करे। होगी पुनरावृत्ति और कर्म-चक्र हमें क्या......?

यह नित्य का ड्रामा भले और देश में सुहाये। व्रज में तो केवल एक देवता हैं—गाये के श्याम। हर पल यहाँ उन ही के नाम की ध्वनि है। उन्हीं को सेवा-पूजा, कथा-लीला या सेवन अनुकरण-श्रवण है। बने तो श्याम से, बिगडे तो श्याम से। कहने-सुनने को केवल एक वही चौपट है। यदि किसी देवता को अपने को यहाँ पुजवाना है, तो उनका दास बन आ जाये। चतुर भोले बाबा गोपीश्वर बन व्रज में बैठे पुजने लगे।

हर घर यहाँ युगल सरकार का मन्दिर है। जो कार्य है, उनको ही समर्पण कर है। सब भगवत-बुद्धि से यज्ञ स्वरूप आत्म कल्याणदायक है। व्रज का वास बड़े भाग्य से मिलता है। जिसको यहाँ रस मिल गया और मन की दौड़ा-दौड खतम हुई। वृन्दावन में आना संसार से सो जाना है। और प्रिया-प्रियतम के चरणाम्बुजों को हृदय में धारण कर निरन्तर जागना है। व्रज की बड़ी महिमा है। तुम पूछो क्यों? अच्छा सुनो!

बहुत दिनों की बात है। साढे पांच हजार वर्ष की बात है। नटवर नागर ने ही भेद बताया था। सो बताती हूं। धीरे से कहूँगी। कलेजा थाम कर सुनना। जिस रहस्य को श्याम सुन्दर पूरा न बता सके, उसे कहने का साहस करती हूँ। मा! बल दो।

लो सुनो! नारद जी ने श्याम सुन्दर से एक बार पूछा—'महाराज! आपका गुरू कौन है?' वह मुस्का दिये।

वह है। सदा ही उनके मुख पर राधे-श्याम है। व्रज में हर समय क्या दिन क्या रात केवल इसी नाम की रट है। और 'नाम' व 'नामी' में भेद नहीं।

इतने नाम की दिन रात रट, निरंतर माला फेरना, तपस्वियों का जीवन, ब्रह्मचर्य, त्याग, पाठ, पूजा फिर भी वह क्यों नहीं प्रकट होते?

विरहिनी यह सब आचरने से कर जब प्रभो का साक्षात्कार न कर पाई थी, तब वृन्दावन आई थी। वहाँ भी उसका सबसे यही प्रश्न था—

पशु गजेन्द्र की एक नाम की पुकार पर स्वामी प्रकट हो गए। और अपने पीताम्बर से उसके घाव पोंछे। अबला द्रौपदी की एक आतुर पुकार पर द्वारकाधीश वस्त्रावतार बन बजाज बन गए। और मैं दुर्भागी आज तक लाखों बार स्वामी को पुकार चुकी, पर वे न ·····

पीछे से किसी ने विरहिनी के कन्धे पर हाथ रखा उसने सामने स्वामी जी को देखा। वे मुस्करा दिये और बोले 'वे आए और अवश्य आये।'

विरहिनी—पर स्वामी जी! मैंने तो न देखा।

स्वामी जी—अपने से दूर को सब देखते है. अपने को बिना ध्यान किये नहीं देखते। तुम अपने कान को, आँख को नाक को देखती हो?

विरहिनी—नहीं!

स्वामी जी—अगर यहूँ वे बीच में तुम से अलग हो जाएँगे क्या विश्वास आयेगा।

विरहिनी—नहीं!

स्वामी जी—तेरे प्रभु सदा तुम्हारे साथ है। पुकारने पर वे वैसे ही प्रकट होते है, जिस भाव से पुकारती हो। सूर्य सदा है। काले काले बादल से ढक जाने से उसका न होना साबित नहीं होगा। वह बादल हटा और उसका प्रकाश प्रतीत हुआ। अश्रद्धा का बादल आ गया है, वह हटा और प्रभु का निरंतर ही दर्शन है।

विरहिनी—प्रभो! मेरी श्रद्धा में त्रुटि क्या? देखो सब ही तो त्याग किया और निरंतर उनके नाम की जाप है।

स्वामी जी—ठीक है। सच्ची हो। पर प्रारब्ध तो तुम्हारे त्यागने

से त्यागी नही जा सक्ती । जन्मान्तर का ऋएा कर्म विना चुकाये वैसे कहां पीछा छोडता है । वैसे तो तुम अपने निज स्वरूप मे कर्म के विकार व स्पर्श से परे हा । प्रकृति के दोप तुम्हे छूते नही, पर कर्म भोगने को ही उस तुम्हारी अकर्ता, अधिकारी आत्मा को कर्म-जनित शरीर रूपी वस्त्र—जो सुख दु ख के ताने-बाने से बुना है—पहनना पडता है । जब तब वह जीएा न होकर छुटे छुटकारा नही । यदि कहो कि अकाल मृत्यु से उसे त्यागू, तो आत्महत्या महापाप है और घोर नरक में ले जाने का हेतु है ।

इसलिए दु ख-सुख सम जान, प्रभु के भजन, सेवा करते यह भोग कर अन्त करएा निमल करती चलो । जहां वह साफ हुआ—मोह नष्ट हुआ—और सूर्य के प्रकाश की तरह तुम्हारे हृदय में विराजमान युगल सरकार के दर्शन हागे ।

विरहिनी—मुझे दर्शन होगे । 'कभी स्वामी के दर्शन हागे मुझ पापात्मा को ?

स्वामी जी—अवश्य केवल उनकी कृपा मे यदि विश्वास रखो तो पाप प्रतिबन्धक नही । क्या वह पतित पावन नही ।

विश्वास की कमी बधन का हेतु है । अनादि काल से वासना जीव के पीछे लगी है । आसक्ति का वह शिकार है । फिर श्रद्धा हो तो कैसे ? गुरू हरि, सत, शास्त्र किसी मे भी अटूट श्रद्धा हो जाये तो बेडा पार है । प्रभु को गाली ही दे ले, तो उसकी मुक्ति है । कोई सम्बन्ध तो स्थापित करे । न सीधा नाम ले, उलटा ही ले ले ।

विरहिनी—सीधा नाम लेने से तो आये नही, उलटे से क्यो आने लगे ?

स्वामी जी—भूल गई वाल्मीक जो की बात ?

विरहिनी—उसका क्या रहस्य था ?

स्वामी जी—श्रद्धा ! नारद जी ऐसे पूरे गुरू वाक् म अटूट श्रद्धा, शब्द मे बडी शक्ति होती है, फिर प्रभु का नाम—उसके जपने वाल को तो उनके स्वरूप की प्राप्ति है रूप भोग्य साम्य प्राप्ति । सायुज्य मोक्ष ।

प्रभु का नाम, परम भाव स्वरूप है। नाम उलटने से भाव तो न उलटा। अर्थात् मानसिक स्थिति मे तो भेद न आया। और श्रद्धा इन्द्रिय का विषय नही, मन की अवस्था है। कर्म से प्रेरे, श्रुति के सकाम वाक् से विचलित बुद्धि अव्यवसायात्मिक कभी स्थिर नही रहती। फिर एक-निष्ठ न होने से श्रद्धा कैसे हो? जब तक ममता, अहकार, सुख-दुख रूपी द्वन्द्व का पूर्ण त्याग न हो, सम् अवस्था मे जीव उपस्थित न हो, दैवी सम्पदा का प्रादुर्भाव नही होता, फिर श्रद्धा कैसे हो?

प्रभु के स्वरूप—उनके रूप, गुण, लीला मे निष्ठा ही का नाम श्रद्धा है। उसमे भाव निश्चयात्मक होने ही का नाम ज्ञान, भक्ति, शरणागति है। इस श्रद्धा के प्रतिबन्धक को काम कहते है, अज्ञान कहते है, आसक्ति कहते हैं, पाप कहते है, माया कहते हैं। जब तक जीव की निष्ठा देवी देवता, घर सम्बन्धी, अनुष्ठान आदि मे है, और इसका कारण है प्रारब्ध! जब तक इसकी उनमे आसक्ति है, उनका अवलम्ब लेता है—यह लाख जप-तप करले, भजन करले, भले सिद्धियां भजन के प्रभाव मे मिल जायें पर निष्काम देव श्री गोपीनाथ की प्राप्ति कदापि नही।

पर जब ही उसके पाप क्षीण हुए, चारो ओर से उदासीन हुआ—न अपन अहकार, बल मे श्रद्धा रही, न सगे सम्बन्धी मे और उसके हृदय से सच्ची पुकार निकली 'हे कृष्ण! आओ!' उस नाम के निकलने मे देर लगती है पर उनके प्रकट होने मे देर नही लगती। सब योग, ज्ञान, कर्म प्रभु मे आसक्ति होने के लिए है। प्रभु मे ही केवल रति होने का नाम अनन्य भक्ति है। बस वही एक मात्र सुलभ उनकी प्राप्ति का शीघ्र रास्ता है।

बालक बार-बार लिखता है, तब अच्छा लिखना आता है। कितने परिश्रम से वेद पाठ शुद्ध करके विद्यार्थी कर पाता है। पर सस्कार भेद से सात्विक भाव के प्रकाश का भेद है। कोई भक्त बना बनाया ही पैदा होता है। साधारण साधक को पुकारते-पुकारते ही वह द्रौपदी की तरह एक बार पुकार प्रकट करने वाली पुकार करना आता है।

विरहिनी—कब और कैसे वैसा पुकारना मुझे आयेगा ?

विरहिनी चरण पकड़ती है।

स्वामी जी—पुकारते पुकारते।

स्वामी जी—बेटी ! तेरी दीनता व व्याकुलता तथा निष्कपट खोज एव अनन्यता ने जैसे मुझे खीचा, वैसे ही कोई समर्थ सत तुझे यहाँ आकर मदद करेगा। अपनी शक्ति सचार कर, प्रारब्ध नष्ट कर तुझे स्वामी के सन्मुख ले जा खडा कर देगा। केवल दृट हो लगी रह, प्रमाद न आने दे। भजन किए जा। एक बार का बिना श्रद्धा का लिया भी नाम बेकार नही जाता। बस ! पुकारे जा बेटी ! तेरा कल्याण हो प्रभु तुझे शीघ्र दर्शन दें। और अपनी गोद मे सदा के लिये बैठाय। जय राधेश्याम

[७] कृष्ण-प्राप्ति के पथ में—बिना गुरु ज्ञान-दीपक के कैसे चाल चली जाये। राह रपटीली है—*अधियारी है। न कोई सगी न साथी* ··

पीछे से आहट हुई। विरहिनी ने मुह फेरा। गोपिका मुस्कराती बोली—मैं तो साथी हूँ।

विरहिनी कण्ठ लगा विलाप करने लगी। हा ! अवश्य तुम मेरी सगी हो। मुझ दुखिया के आँसू पाछने वाली केवल एक तुम ही मिली हो। हाँ अपनी गोद मे लिटा प्यारे की विरह अग्नि में जलती मेरी तपन बुझाने वाली तुम हो। मेरे भाग्य, तुम मिल गई। अब अवश्य एक दिन मुझको मेरे स्वामी मिलेंगे। उनकी प्यारी गोपिका पा फिर और क्या कुछ साधन करना बाकी रहता है, *कदापि नहीं।*

विरहिनी—अब क्या करना है ?

गोपिका—स्वामी को बुलाना है।

विरहिनी—कैसे ?

गोपिका—श्याम आओ ! श्याम आओ ! श्याम ···आ (गोपिका श्याम की गोद म पहुँच गई।)

विरहिनी गोपिका की यह दशा देख, व्याकुल हो पुकारने लगी। पर वहाँ कौन सुनता। मुख पर कान लगा सुनी ता कभी-कभी वही '*श्याम* को महीन आवाज सुनाई पड़ती।

विरहिनी घबरा कर इधर उधर सहायक खोजने लगी। यमुना

पार से गइया आती दिखाई दी। साथ कुछ बालक थे। उनमे से एक ने विरहिनी को चिन्तित देख प्रश्न किया—"मैय्या! क्यो घबराई सी फिर रही है"?

वह बोली—"लाला! श्याम-श्याम पुकार मेरी सखी अपना गीत अधूरा गा अचेत हो गई। अब उस गान को कौन पूरा करे?"

बालक—बताऊँ!

विरहिनी—हाँ!

बालक—कन्हैया पूरा कर देगा।

विरहिनी—कन्हैया कौन है? ऐसे वैद की ही तलाश थी। जल्दी बता तेरे बलि जाऊ।

बालक—(पुकार कर) ओ कन्हैया! अबे इधर तो आ कह तो यह क्या काण्ड रचा है? इस बेचारी पर निर्दयी दया खा। पहले तो घाव करता है, फिर उस पर नमक छिड़कता है। मारता है, फिर मुस्कराता है।

'कन्हैया इधर आ' की मधुर ध्वनि गोपिका के कान मे पडी। वह चैतन्य हो उठी। कन्हैया-कन्हैया कहाँ है? सखी जल्दी बता, कह वह विरहिनी के कठ से लग गई। वह उसे प्रसन्न देख गाढ आलिगन करने लगी। दोनो आपस के प्रेम मे ऐसी आसक्त हुई कि बाह्य-ज्ञान न रहा

जब सुध आई, दोनो ने देखा, चारो ओर सूना था। न गैया, न ग्वाल-बाल। शाम हो चुकी थी। आरती मन्दिरो मे होने लगी थी। दोनो उदासीन वहाँ से उठ दर्शनो को चल दी।

[८] विरहिनी गोपिका को आलिगन कर पूछने लगी—बहन! यह सुन्दर श्याम नाम पुकारने की युक्ति तुमने कहाँ स सीखी!

गोपिका—[मुस्काती] तुमसे।

विरहिनी-मुझसे? मुझे तो यह विद्या आती नही। इसी की खोज मे अनेक साधन साधती, महात्माओ से कथा व उपदेश सुनती फिरी हूँ। पर आज तक अपने प्यारे को तन मन बिसरा ऐसे न पुकार सकी। कृष्ण मे ऐसी अनन्यता, ऐसी तन्मयता कि एक बार नाम लेते ही बाह्य समार क्या, यह शरीर रूपी ससार भी बिसर जाये। बहन! क्या

असस्कारी जीव, जिसके न ऐसे सुकृत हैं, न पूर्व पुण्य जाग हैं, ऐसी पुकार, पुकार सकता है ?

गोपिका—अवश्य ! प्रमाण तो प्रत्यक्ष है ।

विरहिनी—कौन ?

गोपिका मैं ?

विरहिनी—कैसे ?

गोपिका—क्या नही जानती , गृह आसक्त मैं बाल बच्चो वाली फिर दूसरा का बिना अनुभव किये उपदेश देने म चतुर वृन्दावन वासिनी ऐसी पुकार पहले कभी न पुकार सकी थी ।

पर आज वह असम्भव भाव सम्भव हो गया । कैसे ! केवल क्षण मात्र के सग से । केवल उसको जघा पर लिटा उसके आसू पाछे थे । और नित्य की व्यावहारिक आदत के अनुसार सान्त्वना दी थी । उसके मूक हृदय से आशीर्वाद निकला था । ।

विरहिनी—बहन कहाँ ! कहाँ की बात है ? मुझको भी उनके पास ले चलो । मैं भी उनकी सेवा कर, उनका आशीर्वाद प्राप्त कर कृताथ हो जाऊँगी । जल्दी करो कि उनकी परछाँई मुझ अधम पर पडे और मेरे जन्मान्तर के अघ कट जायें ।

गोपिका—अवश्य मिलाऊगी ।

विरहिनी—क्या वे बहुत दूर रहती हैं ।

गोपिका—नही तो बिल्कुल निकट ।

विरहिनी—क्या मैंने भी उनको देखा है ?

गोपिका—हाँ ।

विरहिनी—वह कौन है ?

गोपिका—यह ।

(गोपिका विरहिनी से लिपट रोने लगी । दोना हाय श्याम !' कह बेसुध हो गई ।)

[६] यमुना तट पर वट वृक्ष के तने एक निर्जन स्थान म एक बालिका को घुटना में सिर दिये मानो गर्भासन लगाये बैठी देख भट कते स्वामी जी चलते-चलते रुक गये । चारा ओर सुन्दर दृश्य देख कुछ

देर ध्यानस्थ वह भी वहाँ मौन हो बैठे । बालिका ने कुछ उनकी ओर ध्यान न दिया स्वामी जी ने कुछ सकुचाते पूछा—बेटी ! किस सोच में बैठी हो ?"

बालिका—(बिना सिर उठाये) प्रतीक्षा कर रही हूँ ।

स्वामी जी—किसकी ?

बालिका—गुरुदेव की !

स्वामी जी—तुम्हारे गुरू कौन है ?

बालिका—गोपिका ।

स्वामी जी—गवार ग्वाल बाल, अनपढ गोपिका भी भला किसी की कही गुरू होती है ?

(स्वामी जी की ओर क्रोध से उत्तेजित हो बालिका अपने,को सभालती बोली-) निर्लज्ज ! दूर हो । मेरे गुरूदेव मेरे ईश्वर का अपमान करता है । वृन्दावन की कुन्ज गलियो मे लोट कर अपनी बुद्धि का शोधन कर ? जब तेरी अन्तर की चक्षु खुलगी तब तुझको गुरू की गली का पता मिलेगा ।

गुरू ज्ञान दीपक देगा । उसी से भगवत प्राप्ति होगी । बिना गुरू मुक्ति नही । कृष्ण से मिलाने वाला गुरू केवल वृन्दावन ही म वास करता है वह है मेरा गुरू ।

स्वामी जी—(कुछ धीमे होते) आपका गुरु कौन है ?

बालिका—क्या आप उनका नाम सुनते ही बुद्धि खो बैठे । बता तो चुकी, चित्त आपका वहाँ था ?

स्वामी जी—हाँ याद आ गया ! गोपिका ?

बालिका—जरा सभ्यता से बरतिये । श्री जी की दासी प्यारे की प्यारी श्री गोपीजन कहिए ।

बिना कुछ स्वाध्याय सत्सग के ही सिर मु डा लिया जो इन जगत-गुरू श्री रास रासेश्वरी की सखी श्री गोपीजन की महिमा से अपरिचित हो ।

स्वामी जी—(कुछ अनमने से) मैं तो इन गाय वालो ग्वालबाल और गोपिकाओ को अनपढ अज्ञानी ही समझता था ।

बालिका—स्वामी जी ! पढे तो जरूर हो पर प्रेम का अञ्जन लगाना न पडे। नही तो नारद ऐसे ज्ञानी को उनके आदर्श भक्ति की महिमा गाते सुनते ! शुकदेव जी ऐसे ब्रह्मवेत्ता को उनकी भक्ति व ज्ञान की प्रशसा करते विह्वल होते देखते और उद्धव ऐसे ज्ञानी को उनकी चरण-रज मे ज्ञान के फल रूपी कण भक्ति को ढूंढते पाते ।

स्वामी जी—बेटी ! ज्ञान किसको कहते हैं ? जरा मैं भी तो तुमसे सुनू, जो श्री गोपीजन को ज्ञानी व गुरु कहती हो।

बालिका—यही न जाना तो यह कपडे क्या रगाये ? 'ज्ञान' हैं श्री कृष्ण ! वही विज्ञान हैं और वही ज्ञान विज्ञान से परे हैं। क्या प्रमाण की जरूरत है ? क्या उन्होने स्वय न कहा—

अध्यात्मविद्या गुह्याना ज्ञान ज्ञानवनामहम् ।
ज्ञान ज्ञेय ज्ञान गम्य हृदि सर्वस्य निष्ठितम् ॥

वही जिसका तुम हृदय मे ध्यान करते हो, वह ही ज्ञान है, वही कृष्ण गोपिका का माखन चुराता, गोबर उठाने मे मदद देता, गउएं चराता, कन्हैया बन नन्द बाबा के आगन में खेलता है। कृष्ण-ही ज्ञान है। वही जानने योग्य है। उसको केवल गोपिकाओं ने ही जाना। गोपिका की शरण जाओ। बाबाजी, बिना गुरु कल्याण नही।

स्वामी जी जाने कितनी बार गीता का स्वाध्याय हरिद्वार में न कर चुके थे। बडा तप कर चुके थे। महान त्यागी थे। और स्त्री की तो परछाई स कोसो दूर रहत थे। उनके सगियो ने शास्त्र उठा उनको दिखाया था। 'भैया ! लकडी की स्त्री स भी बचना।' आज यह बालिका ज्ञान का यथार्थ स्वरूप बता कहती है, अपने गुरु से यह ज्ञान प्राप्त किया है। जो-जो भी बात इसने कही, यथार्थ ही कही।

बालिका—बाबा जी ! किस विचार में पड गये ! यह तो रस भूमि है। भक्ति स्थल है। कोरे वाद विवाद, शुष्क ज्ञान को त्याग भक्ति का रस लो।

मत ज्ञान का फल है भक्ति। ज्ञान की परानिष्ठा वही है। ज्ञान की आँच लग जब विशुद्ध बुद्धि हो जाती है, अहकार नष्ट हो जाता

है, ममता जाती रहती है, तब प्रभु स्वरूप मे रति होती है। भगवत्-कृपा होती है और :—

> भक्त्या मामभिजानाति यावान्यश्चास्मि तत्वतः
> ततो मा तत्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम् ॥

भक्ति से भगवत्-प्राप्ति होती है। ज्ञान तुमने अवश्य सीखा। प्राणायाम समाधि इत्यादि रुपी यज्ञ स्वरूप कर्म तुमने गुरु के उपदेश द्वारा किये, उसका फल है कि तुममें इतना ज्ञान हुआ कि इधर निकल आये। अब उस ज्ञान को भक्ति से शोधन कर प्रभु के चरणारविन्द में रति प्राप्त करो।

स्वामी जी—वह कैसे हो ?

बालिका—फिर वही सवाल। गोपिका की शरण जा।

स्वामी जी—गोपिका कहाँ मिले ?

बालिका—खोज करो।

स्वामी जी—कहाँ ?

बालिका—वृन्दावन मे।

स्वामी जी—कैसे पहचानूँगा कि यह कृष्ण प्यारी गोपिका है।

बालिका—स्वामी जी! पहचान कठिन है। जब वही कृपा कर तो पहचान हो। गोपिका का मिलना केवल भाग्य के आधीन है। सब आसुरी भाव-काम, क्रोध, लोभ, ममता, अहकार जब तक नष्ट न हो जायें, दैवी सम्पत्ति का प्रादुर्भाव न हो, तब तक गोपिका नही मिलती।

स्वामी जी—कहाँ ढूँढ़ूँ ? क्या करूँ ?

बालिका—भटको

स्वामी जी—हँसी न करो। युक्ति बताओ।

बालिका—मेरा हँसना बुरा लगता हो तो मौन हो जाऊँ। लो मौन हो गई।

स्वामी जी—नही बेटी! दया आई है- तो युक्ति भी बता दो!

वालिका—निष्कपट निष्काम, निरतर पुकारो।
स्वामी जी—क्या ?
वालिका—रा
कहती वालिका अदृश्य हो गई।

+ + + +

[१०] 'लगन ही जीवन है। यही सार है। जब लग जाय। जहाँ लग जाये। जिसमें लग जाये।

'प्यारे में लगन'—बडी कोमल है। यदि भाग्य स किसी म वह महाभाव जाग जाये।

कितने जीवनो में भटक, नाच नाच, माया की दासी बन वृदावन में भिखारिनी हो विरहिनी ग्रान पडी थी।

लोक-लज्जा, मान प्रतिष्ठा, धन सम्बन्धी सब ही त्याग वह श्याम को ढूँढती सवाकु ज की कु ज गलियों में ग्रान निकली थी।

ग्रँधियारी रात थी। सब ग्रार सन्नाटा था। प्यारे के नाम की टिमटिमाती ज्योति से रास्ता ढूँटती वह चल रही थी। कि विरह तप्त ग्राह ने वह भी ज्योति बुझा दी ग्रतिम सहारा भी गया।

तब प्रिया जी की सखी ने सग दिया। ग्रपनी सूनी ग्रटरिया, सावन की बदरिया, मोहन बिन कैसा जीना' राग सुना विरहिनी का बुझा चिराग जला दिया। विरहिनी मोहन को हृदय मन्दिर में खोजने लगी। तब गोपिका को दया ग्राई ग्रौर प्यारे के मिलन की राह बतलाई। यहा स्वामी जी वह कठिन सौदा झटपट ही किया चाहते थे।

गोपिका ने तब भी रहस्य बताया—दया की भडार ब्रजवाला होती हैं। किसी को प्यासा, भूखा नहीं जाने देती। सदा ही छाछ ग्रौर माखन मिश्री खिला ही देती हैं। यदि भाग्य हाते। हम भी वह गोपिका मिल जाती। ग्रौर कृष्ण मिलन का मन्त्र फूँक देता

२—बलिहारी तेरी श्रद्धा !

प्रिय बहन !

मनुष्य जीवन दुर्लभ है, क्षण भंगुर है। प्रियतम की खोज के अतिरिक्त, सारा नीरस है। तुमसे क्या कहूँ, जिस पर सब ही रहस्य प्रकाशित है। न ऐसी होती तो रसिक शिरमौर की चाह में क्यों निकल पड़ती। हा ! सब ही श्याम क्यों दर-दर भटकती फिरती है ? ओ मूर्तिमान, अनन्य कृष्ण-चाह की विग्रह स्वरूपनी ! सुने जाओ, प्रियतम की मन भावनी कहाँ, हाँ फिर वही पुकार, वही इंतजार……

[१] श्याम ! क्या न आओगे ? मोहन ! यों ही सताओगे, तड़पाओगे, कलपाओगे ? आँख इन्तजार करते-करते पथरा गई। हृदय कंपित हो शांत हो चुका। आँसू बह-बह सूख चले। आह निकल-निकल शिथिल हो गई।

फिर भी हे चितचोर ! तुम न आये। इस भिखारिनी के पास स्वामी ! अब रखा ही क्या है ? क्या उपहार देगी, यदि तुम पधारे। और बिना उपहार में दुखिया क्या न लजाऊगी।

मोहन ! तुम न आये। बताओ ना ! क्या करूं, जो तुम आओ ! इस मेरे सूने हृदय-मन्दिर को पाँव पखार फिर बसाओ।

मडराती चकोरी को देख जी को ढाढ़स आता है निराश न हो, प्रतीक्षा करती रहूँ। पपीहे की 'पी-पी' की पुकार सुन जी चाहता, हिम्मत न हारू। पुकारती चलू ! 'मेरे पी आओ ! स्वामी ! अपनी दासी को कंठ लगाओ, अपनाओ, उसकी हृदय तपन बुझाओ।'

[२] प्यारे ! तेरी दी जान मैंने लौटानी चाही। मृत्यु की चौखट जा खटखटाई। वह न आई। और आती भी कैसे ? किसी एकान्ती को भले वह अपनी गोद देती, पर मेरे साथ इतने साथी देख वह घबराई। कैसे सभालती उन्हें, आह को, आँसू को, मिलन की चाह को।

दर्द को, विरह का। किस किस को। सब ही तो मेरे साथ थे। हाँ मृत्यु भी लजाई। उसने भी आँख चुराई। मैं अपने साथियों को ले लौट आई।

स्वामी ! अब तुम ही बताओ क्या करूँ ? कहाँ सिर पटकूँ ? कौन राह बताये ? जो तुम तक पहुँचूँ। स्वामी ! मेरा आँगन सूना है। मेरी यह सब सहेली बड़ी आशा लगाये बैठी हैं। आँचल बिछाये बैठी हैं। उनकी गोद भर दो। क्या तुम आओगे प्यारे .. ?

'आऊँगा—हैं यह मधुर शब्द कौन कहता है। हे मेरे हृदय वासी ! यह तुम क्या कहते हो। कैसे आओगे ?

'साधन कर' कैसा साधन, क्या साधन ! तुम ही बताओ मुझे तो कुछ करना नहीं आता। तुमसे मिलने को चली थी। एक चाह ले चली थी। राह में आँख बिछाती चली थी। पर पलकों से झाड़ती चली थी। आँसुओं से छिड़काव करती चली थी। आह का पखा करती चली थी। बड़ी आस बाँध कर चली थी। तुमसे मिलन को चली थी।

इस लम्बे पथ से न घबरा चली थी। प्रियतम से मिलन को चली थी।

बहुत दूर का सफर था। एक चाह ले चली थी। निराशा के अँधियारे में आशा का दीपक ले चली थी। प्यारे से मिलने को चली थी।

मैं अपनी जीवन यात्रा पर चली थी। भाव अभाव के समुद्र में गोते लगाती चली थी।

ठाकुर ! तुम्हारी पुजारिन तुमसे मिलने को चली थी। स्वामी ! तुम्हारी सविका तुमसे मिलने को चली थी। पिता ! तुम्हारी पुत्री तुम्हारी चरण रज अपने मस्तक पर धारण करने को चली थी। अपने विरह की गाथा सुनाने को चली थी।

भूखी, प्यासी, अचेत तुम्हारी खोज में चली थी। उस पार, उस पार से आना तुम्हारी मुरली की ध्वनि सुन चली थी। मैं चली थी। यात्री बन चली थी। वे सरोसामान चली थी। तुमसे मिलन को चली थी। मैं चली थी।

[३] 'साधन कर'—तुम इन असमर्थ से कहते हो। 'बल ला'-तुम इस निर्बल से कहते हो। शान्त हो, तुम इस अशान्त से कहते हो। स्थिर हो, तुम इस अस्थिर से कहते हो।

अकेली को तुम बुलाते हो, पर यह अपने वियोग के सगी कैसे त्यागूँ। यह आह, यह आगू, यह तडप, यह कसक इन्हे कैसे निर्दयी बन त्याग जाऊँ। क्या यह अकृतज्ञता न होगी।

पर आऊँगी? जिस तरह तुम राजी हो, वैसे आऊँगी। बिना सग; बिना साथी आऊँगी। अकेली अकेला आऊँगी समार मे मुँह छिपा आऊँगी। स्वामी! आऊँगी। तुमसे मिलने आऊँगी। जैसे कहो, वैसे ही आऊँगी। अवश्य आऊँगी। तुम्हारे पास आऊँगी।

---

[४] स्वामी! 'साधन करती आऊँगी' यही तुम्हारी आज्ञा है, आज्ञा पालन करती आऊँगी। इस नीरस जीवन की बिना नाविक डूबती नैया, तुम्हारी बताई पतवार से साधती आऊँगी, मै आऊँगी। अवश्य आऊँगी। प्यारे! तुमसे मिलने आऊँगी।

बोलो ना! वह मोल भी दू। बताओ ना! क्या साधन करू?

'अपने हृदय मन्दिर म खोज'—

ठीक ही है। यही आज तक करती आई हूँ। रोता इस शून्य हृदय मन्दिर म तुमको खोजा करती हूँ। पर

'जप कर!'

वह भी कर चुकी। देख लो ना! यह अगुली माला फेरते फेरते घिस गई, पर

'तप कर।'

क्या वह अब करना बाकी है। देख लो ना! इस अस्थिया के पिंजर को। केवल तुम्हार 'मिलन की आस' ही सूत्र बन, इन मणियो को धारण किये है। नही तो जाने कब की बिखर जाती, पर

'बस अपना गुह्यतम रहस्य बताता हूँ। अपने मिलन की एकमात्र कुंजी बताता हूँ—

'मेरी विरहिनी की खोज कर'—

[५] प्रेम मन्दिर ! प्रियतम का घर। कितनी दूर ! आह कितनी दूर !

कैसे सुन्दर शिखर ! स्वर्णमय, मणिमय ! पर उन पर वह घटा कैसी ?

है ! और यह क्या ? वह पीताम्बर का छोर कैसा झलका, मधुर वशी की सुरीली ध्वनि कहाँ से आई ?

थोडी देर ! बस थोडी देर ! ओ मेरे उडते प्राण ! सग दे दे। निमिष भर ! केवल निमिष भर ! मेरे नेत्रो ! न वद होओ। बस देख लेने दो। जी भर देख लेने दो।

'उसको—मन्दिर के सिंहासन पर विराजमान ' को अपने प्रिय तम को जीवन आधार को ' बस एक बार ! बस एक बार !

[६] "कठिन है ! सखी ! कठिन—श्याम मिलन कठिन है।" पर और चारा भी तो नही।

"महा कठिन है ! सखी ! महा कठिन—विरहिनी मिलन महा कठिन है।" पर और सहारा भी तो नही।

करूँ भी क्या ? मुझे तो यही आदेश है। 'मेरी विरहिनी की खोज कर।"

वृन्दावन और उसकी कुञ्ज गली। हुआ करें भूल भुलय्या का घर। मैं अवश्य उनमे खोजूँगी।

हाँ उस पार भी जाऊँगी। यमुना किनारे। अवश्य जाऊँगी। विरहिनी की खोज मे जाऊँगी। उस पार जाऊँगी।

[७] "दूर है, बडी दूर है प्रियतम का घर। बावली रास्ता बडा लम्बा है।

विरह की रात्रि से तो लम्बा नही ।
'ग्रौर यमुना जल उमड़ रहा है।'
इन नेत्रों के जल से तो अधिक नही ।
'फिर तू अकेली है न सगी है न साथी।'

—ये-ग्राह, तड़प, ग्रॉसू, कसक—सब ही ये—पर प्यारे ने अकेला हां बुलाया है ! पर नही-नही अपना 'निरंतर ध्यान'—सगी दे दिया है। फिर कैसे कहूँ अकेली हूँ।

"भीग जायेगी, वर्षा हो रही है।"

देख! मेरे विरह की ज्वाला पर, वे बूंदें गिर 'छन ! छन!' कैसा मधुर शब्द कर रही है।

'तेरा कल्याण हो'—अच्छा ! पगली जा, उस पार जा—'

---

[८] उस पार ! हां उस पार ! उस पार !

प्रियतम ! क्यों बसाया, तुमने अपना घर इतनी दूर, हां उस पार ! उस पार !

राह रपटीली और मैं बल-हीन ! राह भटकीली और मै पगली । ओ अनाथों के नाथ क्या न सुनोगे 'इस अबला की पुकार'—बस एक बार—क्या न दर्शन दोगे, एक बार; बस एक बार !

जीवन की घडियाँ, बीतती जाओ। चुरा ले अवश्य ! चुरा ले काल ! चुरा ले मेरे रस; हीन जीवन की सारी अवधि । पर नही, बस आखिरी एक निमिष छोड़ देना—उसे न छेड़ना—वहाँ बैठी है, बड़ी आस लगाये, युगान्तों की दुखिया, विरहिनी की वह व्यथित पुकार—'दर्शन देना, स्वामी । बस एक बार बस एक बार ।'

[९] मै वियोग न सह सकी । मेरी कायरता ! आह ! पुकार बैठी, स्वमी ! दर्शन दे जा, 'बस एक बार' बस एक बार ।

प्रेम का पथ—वीरों का पथ—और उसमें आन पड़ी मैं कायर मैं कलंकिनी ! अपने स्वामी के वस्त्र को मैला कर बैठी । हाँ वही तो वह सदा धारण करते हैं ! अपने प्यारों का प्रेम ।

क्षमा भी तो तुम्हारा गुण है। और मैं हूँ शरणागत अबला— प्यारे? क्षमा करना मेरी कायरता!

[१०] पण्डित जी! तुमने सच ही कहा था—'जो दुःख न सह सके, वह नेह लगाये क्यों'? बालक बोझल गठरी उठाने का साहस करे— तो अन्त प्रत्यक्ष ही है। तो क्या फिर न मिलेंगे?

पर उन्होंने कहा है, 'मिलूँगा। पथ-प्रदर्शक भी बताया है— 'विरहिनी को खोज'। अपना घर भी दिखा दिया 'उस पार'—

वे मिलेंगे—अवश्य मिलेंगे—वे मिलेंगे—

[११] यह कैसी झिझक! कैसा संकोच! कूद पड़ कूद पड़ कूद पड़! उमड़ना जल। गहरी यमुना। न नाविक, न नैया। और मैं अबला, कैसे जाऊँ उस पार!

'कूद पड़'—हां कूदूँगी, अवश्य कूदूँगी, विरह! तू साहस दे। आशा! तू बल दे। मैं कूदूँगी, अवश्य कूदूँगी। नहीं तो कैसे जाऊँगी उस पार।

हाँ उस पार जाऊँगी। यही मेरे जीवन का आदेश है······ पर हैं; वह कौन? मेरी पथ-प्रदर्शक! 'कौन विरहिनी'—"गोपिका का हृदय खिल उठा—हाँ वही विरहिनी—जो मुझे एक बार जीवन प्रदान कर चुकी थी। मृतक जीवन को सजीव कर गई थी। रस-सागर श्याम सुन्दर की झाँकी दिखला गई थी।—मेरी 'विरहिनी' मिल गई। प्यारे! अब मैं अवश्य पहुँच जाऊँगी। हाँ तुम्हारी गोद में, उस पार हाँ उस पार!

[१२] विरहिनी के पास आई थी जप-तप-पाठ-पूजा-कथा-कीर्तन— हाँ जब कुछ भी न उलझा सका, तब आई थी। व्यथित हृदय लेकर आई थी। अपनी करुण कहानी सुनने आई थी। उलझी थी, सुलझने आई थी। किसी की आज्ञा पा आई थी। रातों जाग, दिनों भटक प्यारे को खोजती, प्यारे की प्यारी से भिक्षा माँगने आई थी। हाँ! अपनी व्यथा सुनाने आई थी। रास्ते में काँटे मिले, नदी मिली नाले

मिले, सब ही को पार करनी आई थी। 'वह मेरी कथा सुनेगी'— यही आशा ले गाई थी।

पर है 'यह क्या' यह क्या कह रही है। अपनी धुन में मस्त इसको तो वाह्य ज्ञान ही नहीं। फिर क्या इसमें अटकना उचित है। पर न कहूँ, तो इस विरह को ले जल न जाऊँगी। स्वार्थ के नाते कहूँगी—अवश्य कहूँगी।

---

[१३] तीसरी बार उसने प्रश्न किया, 'प्यारी! क्या कर रही हो, इस एकांत निर्जन स्थान में ?'—वह चौंकी, 'साधन'—वह फिर अपनी धुन में लग गई।

'क्या साधन ? किसका बताया साधन ?

एक स्वामी जी बता गये। यह रेत के कण गिन डाल तो श्याम मिल जायेंगे। इतना कह फिर उसने गिनना शुरु कर दिया।

'बलिहारी तेरी श्रद्धा! तुझे अवश्य स्वामी मिलेंगे—यह कह गोपिका चल दी।

[१४] फिर वही हालत ? कई दिन बाद। गोपिका ने विरहिनी को खोज निकाला, यमुना किनारे लहरों को देख रही थी।

'क्या कर रही हो बहन' ? प्रश्न सुन—विरहिनी गोपिका से 'साधन'—कह चुप हो गई।

'क्या साधन ? किसका बताया साधन ? उसने फिर पूछा। विरहिनी बोली स्वामी जी बता गये, यमुना की लहरों को गिन लें, तेरे प्यारे तुझको मिल जायगे। तभी से लहरें गिन रही हूँ।' 'बलिहारी तेरी श्रद्धा! तुझे अवश्य स्वामी मिलेंगे।' गोपिका आशीर्वाद दे वहाँ से चल दी।

[१५] कुछ दिन पश्चात् गोपिका कालीदह पर जा निकली। त्रिभंगी श्रद्धा से विरहिनी को नैन ऊपर गडाये, एक कदम्ब वृक्ष का सहारा ले खड़ी देखा। वह बोली—'बहन! क्या कर रही हो ?'

'स्वामी जी का बताया साधन' विरहिनी के जवाब देने पर

गोपिका ने पूछा—'क्या साधन है ? मैं भी तो सुनूं'। 'प्रतीक्षा किए जाओ, जब भी स्वामी कृपा कर आ जायें।' 'और भी कुछ बताया है, गोपिका ने पूछा'।

"मन्त्र सुनाया है।" विरहिनी ने कहा।

'क्या ?' गोपिका ने पूछा।

'कैसे बताऊँ ? आज्ञा नहीं ! पर बताये बिना रहा भी नहीं जाता। गुरु-आज्ञा उल्लघन से भले मुझे नर्क हो, तुम्हारा तो कल्याण हो जायेगा इधर पास आओ सुनो—रा··············· ······· ····

[१६] 'मन्त्र का जाप, कृपा की आशा, मिलन की प्रतीक्षा—रास्ते का यह खर्चा पा गोपिका विरहिनी के पास से चल दी।

विरहिनी के अन्तिम शब्द वायु द्वारा उसके कानों में प्रवेश कर गये—

श्याम ! क्या दर्शन न दोगे ? बस एक बार, बस एक बार ···· ···

३—पपीहे ! बता, पी कहाँ ?

प्रिय बहन !

आगे कहती—फिर कहती, कहानी—कहानी, कहानी ही होती है, न कम न ज्यादा। मेरी भी कहानी वैसी ही है। धैर्य से सुनना 'यही भीख माँगती हूँ।' मैंने कहा 'कहानी सुनाओ' उन्होंने प्रारम्भ कर दी। सुनने लगी, सुन रही हूँ, आगे भी सुनूँगी। कैसे खत्म होगी और कहाँ, कहानी कहने वाली जाने। जो लेखनी कहे, 'मैंने कही' तो उसकी भूल है। पर भाव परम चैतन्य की बात, क्षुद्र चेतन भाव ग्रहण तक करने में जब असमर्थ है, तो उसके कहने का साहस कैसे करे। जड़ को चैतन्य करता, ऐसा है मेरा स्वामी। तुम ही न्याय करो, क्या यह काठ की लेखनी यह कहने में समर्थ है, यह कहानी। हम तो निमित्त मात्र हैं। यश देना उन्हें सुहाता है। जो भक्त 'वाह' कह देते हैं। यदि किसी परम भागवत के हाथ पड़ गई तो उसने आँख से लगा, दो आँसू बहा, आह खींची—मुझ भिखारिन की झोली भर गई।

[१] प्रतीक्षा—विधाता ! ऐसा कठोर शब्द क्यों रचा था—'प्यारे के मिलन की प्रतीक्षा कबतक— ? यदि रचा था तो इसकी अवधि भी निश्चित कर दी होती। नहीं तो, ओ वेदवेत्ता चतुर्मुख ! तुम ही बताओ, मैं कब तक 'प्रतीक्षा करती जीऊँ ?

पर ठीक ही है। मैं समझ गई। तुम करते ही क्या ? शब्द लाते भी तो कहाँ से ? कालातीत का विरह भी तो काल की पकड़ से बाहर है। सो कह दिया, हाँ ! प्रश्न के उत्तर में कह दिया—उसी प्रश्न के उत्तर में प्यारे दर्शन कब दोगे—'प्रतीक्षा किए जा।

आशा ले कब तक जीऊँ ? मन भी तो विमुख हो चले हैं। स्वास कहते, कब तक चलें ? नेत्र कहते, कब तक न झपकें ? श्रोत्र

वहन, मुरली का मधुर ध्वनि कब तक न पान करें ? जिह्वा कब तक नीरस रहे ? सब ही का ना अब तक आ लालन दिला जीवित ना था। व आवें अवश्य आयेंगे, बस एक बार, बस एक बार।

पर धीरज की भी तो सीमा होती है। कब तक का आशा ले जीय। नीरस जीवन ले तप। परवश हूँ कर भी क्या , न पर क्या जोर।

आह का जोर—तुम कहती। कितनी सद व गम आह खींच चुकी ? रात्रि में, दिन में, सभी ही समय पुकार चुकी, रो चुकी तप चुकी पर वह न आय। क्या वह न आयेंगे ? और इन आशा का पुला छोड़ इनके वर्षों के सगी प्राण यो ही निकल जायेंगे ?

---

[२] बलि-बलि जाऊँ नर ! आ मर सगी ! फिर पुकार इस अधियारी रात में। बस एक बार वहा मधुर ध्वनि पुकार।

'पी कहाँ ' बस एक बार। हा, एक बार।

पपीहा ! तू क्या चुप हो गया ? मुझ अपना का उस ध्वनि की अधिकारिणी न जान। ठीक ही है। हाँ मान हो जा, मान। इन उड़ने प्राण-पखेरू को दीपक न दिखा। यह लौट आयेंगे। जब वाद विरस न मिलेगा, फिर मेरे शिथिल पिंजड़ में आन फसेंगे। हा न बोल, वह मधुर पुकार पी कहा ? 'पी कहा ?

मैं अनाधिकारिणी हूँ। पूर्ण अनाधिकारिणी ! शपथ खाकर कहती हूँ, तू मत सुना, मुझे मत सुना वह बहुमूल्य महामंत्र। जिसका तू निरंतर जाप करता है। 'पी कहा, पी कहा।

मैं भिखारिन हूँ। फिर कैसे खरीद पाऊँगी यह नाम रत्न जो तू निरन्तर लेता है। निधन मैं अपनी ओर निहार दुखी होता है। न पा सकूँगी, यह दुर्लभ पुकार, पी कहाँ ? पी कहा ?

बलि-बलि जाऊ आ विरही पपीहा ! दया कर, बतला ना मुझे कैसे पुकारूँ मैं पी कहा ' बस एक बार। हा एक बार।

[३] कल्पना पुरानी बात है। जब तुमने सृष्टि रची थी। इन्द्र एम राजा और मुझ ऐसे रंक बनाये थे। ब्रह्मा रुद्र, वरुण सब ही देवता

ऐश्वर्य पा फूले न समाये थे। मुझ निर्धन को भिखारिनी देख वह मुस्काये थे। मैंने नीची आखे करली थी। पाँव की उँगलियों से पृथ्वी पर कुछ लिखने लगी थी। मेरी ओर तुम्हारी दृष्टि गई थी। तुम्हे दया आई थी। 'तुमको भी दो'।—शब्द सुन सब ही तुम्हारी ओर देखने लगे थे। सबही मूक हो सोच मे पड गये थे। विचारने लगे थे, क्या 'मुझ ही को देवाधिदेव की पदवी दो'—तब सब ही को सतोष हुआ, जब फिर कहते सुना, 'अपनी चाह'। 'आज से तू मेरी कैदी हुई।'—

प्यार की मै कैदी आज से हुई'—सुन मुझे राता नीद न आई। मारे खुशी फूली न समाई। अपने भाग्य कैसे सराहूँ ? जिसकी निरतर देख भाल मेरे स्वामी को कैदखाने मे बैठ करनी पडे, कि कही उसका वदी भाग न जाये, उस कैदी की क्या महिमा न गाइये ?

चतुरानन ऐसे चतुर बुद्धि वाले न समझे तुम्हारा मर्म ! जब तुम कैदी बन गये। हाँ मेरे कैदी। मेरे साथ इस मेरे हृदय मन्दिर मे वद हो गये।

किसी को कैदी बनाना आसान नही है, खुद कैदी बनना पडता है। फिर तुम काल की पकड मे परे—तुम्हारी कैद की अवधि नही। जब मुक्ति तुमसे बाहर हो, तब ही तो मुक्त कर सको। फिर कैसे मुक्त हो, कहा जाओ ? जब तुम से बाहर कुछ नही। बाहारी ? मेरी कैद ! जिसने मुक्ति को भी कैद कर दिया। मुक्तिदाता को भी बदी बना रखा है। हाँ सदा के लिय, सदा के लिये। प्यारा मेरा कैदी है। मेरे हृदय-मन्दिर मे वद है। मै प्यारे की कैदी हूँ। उसके रचे बदीखाने मे बद हूँ।

[४] प्यारे ! क्या तुम दु खी हो ? क्या कैद तुम्हे नही सुहाती ? हाँ मेरे साथ इस तरह बद रहना नही भाता, तो जाओ तुम्हे मैंने मुक्त किया। जाओ तुम आज से स्वतन्त्र हो जाओ मुझ से दूर जाओ।

पर यह क्या ? सकोच कैसा? क्या नही जाते। क्या नही जा सकते? मेरा सग तुम्हे ऐसा भाने लगा, जो कैदी बने रहना ही भला लगता है।

बताओ तो, ओ मुक्तिदाता ! सबको मुक्त करने वाले। किस मेरे गुण पर मोहित हो, जो मुक्त होना त्याग मेरे हृदय के बदीखाने मे बदी

बने पड़े हो। कहने पर भी नहीं जाते। देखूँ तो तुम किस चीज में उलझ गये हो ?

मुझ को तो कुछ भी ऐसी बहुमूल्य वस्तु, जो तुम्हें प्रिय हो दिखाई नहीं पड़ती। हाँ, मैंने सब ओर खोज डाला। कुछ भी तुम्हारे का फँसान वाली वस्तु न पाई। पर तब भी तुम आँख गड़ाये उस हृदय-कोण की ओर टकटकी लगाये देख रहे हो। माना उसे यदि कोई वहाँ से उठा ले तो तुम निर्धन हो जाओगे। हाँ, इन्द्र व ब्रह्मा के बनैया स्वर्ग व पाताल के रचैया, तुम उसके खो जाते ही फकीर हो जाओगे।

मैं भी चलूँ, देखूँ। हैं! तुम्हारी आँखें क्या भरी आती हैं, ओ पुरुषोत्तम! ज्यों-ज्यों मेरा कदम उधर उठता है।

मैं निकट पहुँची, तुमने दो आँसू ढलका दिये। मैंने हृदय से लगा ली उठा के वहाँ से—मेरे हृदय मन्दिर को प्रकाश करने वाली—वही—हाँ वही से—तेरी प्यारी वस्तु। हाँ—वही, 'तेरी चाह।

[५] भाव, भावमय भाव स्वरूप होने पर ही अनुभव होता है। इस रूप से ही रसिक बनना है। रस पान कर रसमय होता है।

अँधियारा क्या जाने प्रकाश का स्वाद। प्रकाश जब उसका चुम्बन करने को बढ़ता है,एक ही आलिंगन, एक ही स्पर्श में वह अपना रूप खो बैठता है। प्रकाश रूप हो जाता है।

प्यारे! क्या तुम यह न जानते थे— कैदी बनाना ही कैदी बनना था। क्या तुम जानते थे तुम्हारी सृष्टि का यही नेम है। भृंगी कीट को कैदी बनाने चलती है—क्या होता है—कब तक कैदी स्वयं बन बन्दीखाने के दरवाजे पर बैठी चौकसी करती रहती है। कब तक? जब तक कीट-कीट नहीं रहती भृंगी ही भृंगी होती है। कब तक? जब तक स्वरूप भेद नहीं मिट जाता एक नहीं हो जाते।

प्यारे! चाह कठिन है अपनी चाह—तुम कैसे दे बैठे? ओ मुक्तिदाता! अपनी स्वतन्त्रता त्याग कैदी क्या बन बैठे? चाह कितना ही सुसज्जित मेरा हृदय मन्दिर, कितने ही सुन्दर व्यक्ति—आह आँसू तड़प सिसक वहाँ विराजमान थे और उनका परम प्रिय मित्र विरह ही क्या न वहाँ शासन करता था पर कैदखाना आखिर कैदखाना है।

देखो ना! अब लगे डोलने—फिरते, 'अपनी चाह दे, इन चाहने

वालो के पीछे। सत्य के उपदेशक, फिरते हो माँ तक से झूठ बोलने—'मा ! ग्वाल बाल सब बैर बांध्यो। बरबस मुख लिपटायो'—तुम ही सच बताओ, क्या तुमने गोपी का माखन न चुराया था ?

ओ मन्दिर व मस्जिद मे पूजित ! आज क्या शोचनीय तुम्हारी दशा है, जो फिरत हो भक्तो की चरण-रज ढूंढते। हाँ—यह सब क्या ? इसलिए न, कि कैदी बनाने निकले थे। 'हाँ अपनी चाह' की बेडी पहनाने और बन गए खुद कैदी।

ओ रसिक शिरमौर ! छलका दे जरा सी बूंद इस ओर भी, अपने छलकते हुए पैमाने से, उस मदिरा की जो तू कैदी बन नित्य ही अपने चाहने वाला के हृदय मन्दिर मे विराजमान हो पान करता है ! मे बलि जाऊं।

[६] यह क्या स्वामी ! अपने कैदी के सामने सम्राट को आंचल फैलाना नही सुहाता। कोई देख लेगा तो क्या कहेगा ?

यह क्या प्यारे ! तुम भिक्षा के लिए क्यो हाथ बढाते हो ? स्वामी को दासी के सन्मुख, यह भाव नही अच्छा लगता, क्या कहेगा कोई ?

नही, नही, यह क्या ? यह आँसू क्या ? यह चरण की ओर दौडना कैसा ? स्वामी ! यह क्या, यह क्या, बस बस कहती विरहिनी मूर्छित हो गिर पडी।

[७] प्यारे की आँख मिचौनी—कैसा गुह्य रहस्य—कैसा गम्भीर मर्म—कैसे समझ म आवे ?

'प्यारे की खोज मे'—केवल यही एक दीपक था जो अपने अँधियारे जीवन मे पा, वह चली थी, उसकी खोज मे।

'प्यारे की चाह'—यही एक अवलम्ब था—उसके झुके जीवन को सहारा देने वाली एक मात्र लाठी थी

और आज वही उसका एक मात्र सहारा'—हाँ वही चाह—भिक्ष बन प्यारा उस मे माँग बैठा—न देती, कैसे साहस करती—देती तो कैसे जीती—

हाँ वह मूर्छित हो गई। अपने जीवन प्यारे की चाह —का वियोग न सह सकी।

तू कैसा दानी है ? ओ नाथ ! ओ मोही ! तू कैसा ईश्वर है ? दी हुई वस्तु भी कोई वापिस मांगता है ? और फिर उसे पा जब किसी ने उसे अपना जीवन बना लिया हो।

ओ करुणागार ! करुणा त्यागी थी, तो क्या साथ-साथ न्याय भी खो बैठे !

तेरी वहन यहां न चलेगी। उसके पास गवाह हैं। आह है—तड़प है सिसक है। सब ही कहेंगे, हां हमारी महारानी—विरह -को हम दासियों के संग स्वामी ने दान किया। तब ही से हम अपनी रानी के संग उसके हृदय मन्दिर में विराजे। तब ही से वह 'विरहिनी' कहलाती है।

'मेरी चाह'—'मेरी चाह'—तुम लाख पुकारते डोलो। कैसे दे डाले तेरी चाहने वाली तेरी चाह। अपना जीवन 'प्रीतम की चाह' कैसे दे डाले विरहिनी। अपने प्रकाशमय जीवन में एक बार प्रकाश पा कैसे दे डाले वह दीपक। अंधियारा किसको प्रिय है ?

दान दिया था, तो विचार लेना था। क्या इन करोड़ों ब्रह्माण्डों में कुछ रहा ही नहीं, जो तुम इस 'अपनी चाह' की खोज में छिन छिन की भिखारी बनते फिरते हो।

जीवन ही सबको प्रिय है—सर्वश्रेष्ठ वस्तु है। क्या यही तुम्हारा जीवन है ? तो क्या तुम्हारा जीवन, तुम्हारे चाहने वालों के पास धरोहर रखा है ? पर जीवन बिना तुम जीवित कैसे हो ? हां अब मैं जान गई, तुम साथ ही साथ अपने चाहने वालों के बदीखाने में धरोहर हो।

तुझे कहीं नहीं न खोना ? पता न चला। आज पता चला तू कहीं रहता है, तेरा घर कहां है।

वहीं न ! तेरे चाहने वालों के हृदय मन्दिर में। विरहिनी के हृदय-मन्दिर में। अब मेरे जीवन ! मेरे प्राणाधार ! तुम्हें मैं खोज निकालूंगी—यहीं—वहीं"

मैं चल दी उस पथ पर—गोप्रता में चल दी—किसी की याद''' हां—तेरी विरहिनी की खोज में।

[८] तू ही हमरा पथ दिखलाता है। पास बुलाता है। गले लगाता है। यही नहीं, रोता है—रुलाता है। तड़पता है, तड़पाता है।

क्या निर्मित-कवल इसलिए न, तू भक्तवत्सल है। नहीं-नहीं और भी एक कारण है। तू बड़ा दानी है। क्या तू अपने हीं को नहीं द जानता ? उससे भी अधिक देता है। अपना जीवन दे डालता हैं। फिर वैदी अपने चाहने वाला का बन सदा के लिए उनके हृदय के बदाग़ान में आन विराजता है। नहीं-नहीं चोर बन फिर अपनी दी हुई वस्तु को खाज म लग जाता है। भिखारी बन हाथ पसार अपने चाहने वाला से उसे आँचल फैला माँगने लगता है, जिसको दे तू भिखारी हो गया। उसका मूल्य जान उसकी खोज मे चल पड़ता है। ऐसी है यह तेरी चाह।

तेरी चाह' ले ही तेरी निर्धन चाहने वाली धनवान हो जाती है। एकान्त म बैठ सेती है। निद्रा नहीं आने देती, कहीं उसे खो न बैठ। इस लम्बे जीवन की घडी उसी के सहारे वह निमिष म काट देती है। आँसू को तेल बना उस दीपक को प्रज्वलित रखती है। ऐसी है तेरी चाह।

तू दिया हुआ मागने म नही लजाता। कृपण कहलायेगा, इसकी परवाह नहीं करता और हाथ पसार बैठता है—माँग बैठता है अपने चाहने वाला से वही अपनी चाह। यह भी तो नही सोच सकता कि अनेक ब्रह्माण्डा का साम्राज्य रखते हुए जब तू नही जी सकता तो कैसे जायगी तेरी निबन विरहिनी। जिसका बन, धन केवल वही है, एक मात्र तेरी चाह।

पर वाह री विरहिनी! तू धन्य है। तू कैसे अपने स्वामी की पसारी झोली खाली रहने दे ?

प्यारे ल—यह कह तू दे डालती है और साथ ही साथ अपना जीवन

(विरहिनी मूर्छित हो स्वामी के चरणा पर गिर गई।)

४—प्यारे की लगन

प्रिय बहन !

विरहिनी की खोज, आत्मा की खोज, जीवमात्र की खोज है। जब भी टेस लगे। जब भी हृदय बह चले। कब वह शुरू होती है ? कहाँ से ? कहाँ को ? उसका तो कोई नेम न सुना, न मालूम। आग है—यह लगन—जब ही लगे संसार फूंक दे। और यात्रा पर आरूढ कर आप अंधियारे जीवन में दीपक बन पथ दिखाती चले। 'प्यारे की प्यारी' की खोज करेंगे। अवश्य करेंगे। ज्योंही उनका आदेश मिला, तड़प जागी, विरह ने सोया जख्म जगाया और हम चले। हाँ हम और तुम। भला कहाँ—प्यारे की प्यारी की खोज में। इस बीच धैर्य। उस डगर को जो कर चुके, सुनो उनका हाल कहती हूँ :—

[१] पेड की ओट मे छिपा पुजारी यह अपने ठाकुर की लीला देख रहा था। मूर्च्छा मे चैतन्य हुई विरहिनी से जाकर पूछने लगा: 'तू तो मर गई थी।'

'प्यारे का मारा मरता नही।' 'जीवन' में मृत्यु की छाया नही प्यारे के लिए जो पल पल मरता है, वही जीता है। या तो जगत ही मरता है, कौन जीता है ? जो जगत मे मरता-जीता है वही मरता है जो मेरे प्रभु में मरता है, वह तब भी जीता ही है, सदा ही जीता है।

प्रकृति के अजन लगाये नेत्र उस जीने को देख नहीं सकते। भला प्रभु के हाथ में रह भी कोई मरता है। तब भी मूढ कहते हैं, जटायु ने प्रभु के जीवन दान देने पर भी मृत्यु स्वीकार की। प्रभु की वाणी को जटायु ही समझा। 'जीवित वह अमर जीवन की गोद में बैठा, फिर जीवन को फिर वह माँगता ? प्रभु भक्त की सदा परीक्षा लेते हैं, वह उत्तीर्ण हुआ।'

[२] 'किधर है, मेरे प्यारे के प्यारे, मेरे अघ से न डरने वाले', बता दे ? 'कहाँ रहते हैं वह तपहीन, बलहीन, भिखारिनी की गोद में बैठा आँसू पोंछने वाले'—वह कहने लगी।

'मेरी परछांई तुम्हारे स्वच्छ वस्त्र पर न पड जाये। मेरी श्वास तुम्हें स्पर्श न कर ले। हाँ दूर ही रहो, दूर ! ओ पुजारी !' वह बोली—।

'मुझ दुखिया का दर्द बाँटने वाला ! ओ साँवरे ! क्या कोई नहीं।' विधाना से चूक पडी अब मैं जानी,

'है ! अवश्य है ! ओ मन्दिर में बैठ मूक भगवान ! मैंने तुझे मुस्कराते देख लिया। "है, अवश्य" कहते सुन लिया।'

'फिर तू अब मन्दिर पट क्या नहीं खुले रहने देता ? क्या अपने की आज्ञा भी नहीं मानता ?'

दुराता है, ठुकराता है, तो मैं जाती हूँ। तृषित जाती हूँ, व्याकुल जाती हूँ। अपने भगवान के विरह को साथ ले जाती हूँ। ले तू अब सम्भाल पुजारी ! अब तू सम्भाल ! उस सिंहासन पर विराजमान अपने भगवान को सम्भाल सभा ·· · (कहती विरहिनी गिर पडी पुजारी डर गया। मन्दिर के पट बन्द हो गये।)

[३] मुसाफिर ! गठरी सम्भाल ! राह रपटीली है। काटे हैं रास्ते मे, नदी और नाले। पहाड हैं पहाड। तेरी यात्रा कठिन है।

'और फिर न तेरे साथ सगी न साथी ! इतना सामान लाद अकेली क्यों निकल पडी !'

'पर ठीक है। उनका त्यागना योग्य न था। तूने ठीक ही किया। जिन्होने जीवन भर तेरा साथ दिया, भला उन्हें कैसे त्यागती। अवश्य साथ ही लेकर चलना था। यह बोझ साथ ही लेकर चल इस विरह, इस तडप, इस आसू को साथ ही लेकर चल। प्रभु तेरा कल्याण करें।

[४] कैसा प्रभु ? जो मेरा कल्याण करने का दम भर रहा है। तू क्या कहता है पुजारी ? कहाँ रखूँ तेरा आशीर्वाद ? मेरे रोम रोम तो भरे हैं। तू अपनी चीज आप सम्भाल।

हाँ रोम रोम मे व्याप रहा है—'विरह'। उसको पा मुझे और कुछ न चाहिए। वही मेरा जीवन, मूर्तिमान आशीर्वाद है। राह का तोषा है। इसे पा न राह की थकावट न भूख, न प्यास मुझे कुछ भी नही सताती। न प्रमाद ही घेरता है। जहा यह चौकीदारी करे चोर कैसे आये। तुझे कैसे बताऊँ यह कैसा चैतन्य है ? मुझ ऐसी जड को भी जिला रखा है। ओ पुजारी ! मुझे तेरे किसी भी प्रभु की आवश्यकता नही। यही तेरे प्रभु का जीवन है।

[५] नाहक इससे अटकी। यह न सोचा मे क्या कह रही हूँ, किससे कह रही हू ? यह मूढ, परम रहस्य को मुझ पगली विरहिनी की बड समझा। तभी तो कहता है, 'तेरा विरह मेरे प्रभु का जीवन है।'

ओ तेरे मेरे चश्मे से देखने वाले मूढ ! सत्य द्वन्द्वरहित होता है। कृष्ण राधा और राधा कृष्ण हैं। दोनो म भेद नही। सयोग वियोग रुपी पट का आनन्द लेने को ही रुई ताने बाने म परिणत होती है। कृष्ण ही मे राधा कृष्ण है। लीला की चादर हटी और कृष्ण ही कृष्ण है। विरहिनी राधा की चादर ओढी और राधा कृष्ण हैं। कैसी आनन्दमय लीला है। विरह ही कृष्ण का जीवन है। राधा ही कृष्ण का जीवन है। लीला म वचित कृष्ण केवल कूटस्थ, ज्ञानानन्द ब्रह्म ही हैं। जो सुख चाह तो विरह पूज। विरह ही जीवन है।

किसका " विरहिनी के कान म शब्द पडा। पीतम्बर का छोर भलका, हँसी की आवाज आई " आवाज आई

गिरती हुई विरहिनी के मुख से निकला 'तेरा' पुजारी पुजारी न था तू ही था, हा, तू ही था—ओ चितचोर तू ही था।

[६] हैं तुम यहाँ ? इस वन म अकेली पृथ्वी पर पडी हो।" गोपिका न विरहिनी को गोद म लिटा प्रश्न किया।

'अकेली तो नहीं हू—आकुल प्राण की ल पडी हूँ"। अकेली तो नही हूँ—व्यथित हृदय को ले पडी हूँ 'अकेली' तो नही हू—अधीर जीवन को ले पडी हू।

वन म तो नही—पृथ्वी मय्या की गोद म पडी हू। पर हाँ वन' मे पडी हू। तपन वन म पडी हूँ। प्रियतम जहाँ नही, उस अधियार वन म पडी हूँ। व्याकुल पडी हू। दिन मसोस पडी हू। किसी की याद

लिए पड़ी हूँ। आशाओं का गला घोटे पड़ी हूं। एक प्रियतम के मिलन की चाह ले मैं मृतक समान पड़ी हूँ। हा इस वन मे पड़ी हूँ। 'अकेली' पड़ी हूँ। कब आवेगे प्रियतम—हाय प्रियतम ! कब से मै दुखिया टिमटिमाती आशा लिये पड़ी हूँ। न आओगे श्याम ! मै तुम्हारी ही प्रतीक्षा मे पड़ी हूँ। अकेली पड़ी हूँ। केवल तुम्हारे मिलन की आशा लिये पड़ी हूँ। फड़फड़ाना खतम कर, शिथिल हो पड़ी हू। क्या क्या तमन्नायें लिए पड़ी हू। क्या तुम न पूरी करोगे? इस मेरे जीवन में यदि पूरी न करना था, तो क्यो राग छेड़ा था। जो न आना था, तड़पाना था, रुलाना था, तो क्यों विरह मेरा जीवन बनाया था ? भिखारिनी बना वन वन भटकाना था। दर दर ठोकर खिलवाना था !·········मैं मर जाती मर जाने देना था। हाय ! यह तुमको न करना था। मेरे दर पै आई मौत को न लौटाना था।

देखते क्या हो ? तुम्हारी करनी मुझसे नही छिपती ओ छलिया ! मुझे सब याद है। खूब याद है। मुझे याद है, तुम्हारा मुझे तड़पते छोड़ कर चले जाना, मुझे खूब याद है। मेरा पुकार पुकार हार जाना और तुम्हारा खाक उड़ा आवरण डाल छिप जाना, मुझे खूब याद है।

याद है, मुझे खूब याद है। आसुओं की माला पोना, मुझे याद है। तुम्हारा पहनने को मस्तक नवाना मुझे याद है। हर्ष से प्रेम के आसू आ, मेरी आँखों के सामने तिमिर का छाना खूब याद है। अँधियारा आना खूब याद है। तुम्हारा अदृश्य हो जाना हा मुझे याद है। तड़पता मुझे छोड़ जाना याद है, याद है, श्याम···

[७] 'धीरज धरो, प्यारी ! मेरी विरहिनी ! यह व्याकुलता प्राण न हर ले जाये। शान्ति शांति ·····' गोपिका की बात काट विरहिनी बोली—"तो क्या यह प्राण अभी बाकी हैं ? निर्दयी, निर्लज्ज यह अभी बाकी है। मेरा स्वामी चला गया, मुझे बिसरा चला गया, मेरा सर्वस्व चला गया। इस पिंजड़े मे अब क्या बाकी है, जिसकी चौकसी करने को यह बाकी है।

ओ मूढ़ ! तुझे मैंने क्षमा किया। सब पापों का प्रायश्चित्त कर अभी जा, उनको खोज मे जा, चरण-चिन्हों को देखता जा, इन आंखों को

सार लेना जा, राह में विछाना जा, नमस्कार करता जा, प्यारे की खोज में जा सांवरे का स्मरण करना जा'—।

जो पूछ क्यों आये—लजा जाना—आंसू भर लाना—व्याकुल हो जाना—आहों का तूफान खड़ा कर देना—तड़पना, आकुल हो कहना, पाप का प्रायश्चित करने आया हूं। विरहिनी का भेजा आया हूं—स्वामी क्षमा मांगने आया हूं। इन चरणों पर उपहार बन न्यौछावर होने को आया हूं—विरहिनी का पठाया आया हूं।

जा,—ओ मेरे अपराधी प्राण! तू जा—हां प्यारे की खोज में जा—मेरे सांवरे सलाने श्याम को ...

[८] 'जीवन' कैसा सुन्दर शब्द है—सं सार इसके लिए मरता है। सं सारी मरे तो मरें—भोग प्रिय सब को ही होते हैं, कैसे त्यागें!

पर महात्मा भी तो उस जीवन पर जान न्यौछावर करते हैं। यदि और जी सकें। क्या क्या जप-तप, सं यम, साधन, युक्ति उसके लिये नहीं करते हैं। व्रत, अनुष्ठान करते हैं। ऐसी मोहनी है, जीवन की आशा'।

और एक मैं विरह की मारी सब से कहती, ले लो यह मेरा जीवन। पर कोई पूछता ही नहीं। मृत्यु भी हाथ बढ़ाने घबराती है।

मैं भी तो देखूं, यह संसार प्रिय मेरे स्पर्श से, मेरे संग ऐसी दूषित क्या हो गई! जो अब सब इसको देने पर भी लेने से घबराते हैं।

पर नहीं—इन प्राणों को श्याम सुन्दर के पीछे भेजा था। वह तो न घबराये। चलते २ रुक गए। आंखें भर लाये। सत्कार दिया। संसार को अप्रिय, मेरे स्वामी को वह क्या प्रिय लगे। उनमें उन्होंने क्या देखा, जो संसार की आंखों से अदृश्य था।—वही—क्या तुम नहीं जानती! वही, प्यारी गोपिका वही 'प्यारे का विरह'

[९] प्यारे को 'अपना विरह' बड़ा प्रिय है। उन सुख के सागर, ऐश्वर्य व माधुर्य के भंडार को सब ही तो प्राप्त है। यदि उनके पास नहीं है, तो केवल यही—अनन्य भक्त शिरोमणि का विरह।

अप्राप्त वस्तु सब ही को प्रिय होती है। और यदि वह अपना पूरा शृंगार कर निकले तो कौन अधीर न हो जायगा ...

मूर्तिमान हो जव वह, आसू, तडप, व्याकुलता, कसक सब को गोपी रूप धारण कर चलती है—नहीं वन म, क्वासि कृष्ण !—'कहा है मेरा प्रियतम—किधर गया मेरा चितचोर'—वह विचरती है—कौन ?—वही, मेरी मैया, 'श्री राधे'—वृक्ष पक्षी सब ही चैतन्य हो मा के चरणों की रज धारणकर झुक जाते है।

व्रज की लता, व्रज के वृक्ष आज तक झुके है। उस विरह की महारानी के चरण स्पर्श की इन्तजारी में—! मा ! क्या तुम न आओगी मा—मा—मेरी मा

[१०] जीवन को पहेली वनाये विना कोई कैसे जीये। कुछ तो' ले' जीना सभव है। चारा तरफ कितना सामान विक रहा है ! तडप, कसक, विरह दुख व्याकुलता ! कुछ भी ले लो। उसम उलझ जाओ—वस जीवन मिल गया—उसे ल लिया करो जन्मा।

गुप्त रहस्य कोई वताया नही करता, पर तुम वहुत दिन से यह चौखट छेके वैठे थे। पल्ला छुडाना भारी हो गया। सो उपदेश कर दिया। अव इसे अच्छी तरह गठिया लो। मत्र है, महामन, परम पवित्र साधन है। जहा इसे साधा और काम वन गया। और लक्ष्य प्राप्त हो गया। परम लक्ष्य मिल गया। वह तो तुम जानते ही हो क्या—देखते हो मानो जानते ही नहीं—सो सुन लो फिर से उसका नाम, श्याम !

क्या तुम काप क्या गये ? क्या इसकी शीतलता न सह सके ! हैं तुम उछल क्या पडे ? क्या इसको ताप न सह सके !

हाँ, यह ऐसा ही है। ताप व शीतलता दोना ही तो इसम भरी है। उसका विरही तभी तो कभी हसता कभी रोना कभी नाचता कभी शा त वैठता है।

ना ! ना ! रोग' नही है। पर हा विचित्र रोग है। जिसक अतर म औषधि, अचूक उस रोग को नाश करने वाली छिपी है।

नाम कैसा विचित्र, कैसी प्यारी वस्तु है। जिसे वियाग प्रिय वह इसे जपता, जिसे सयोग सुहाता वह इसे रटता—ऐसा है यह नाम—भला कौन सा—वही श्याम' !

[११] 'राधे, श्री राधे'—हैं—मेरी मैया को कौन इस एकान्त वन में पुकार रहा है। मैं भी चलूं, देखूं यह मुझसे ईर्षा करने वाला कौन है? चलूं उससे लड़ूं।

हैं! यह कौन? पपीहा! तूने 'पी-पी कहना कब से त्यागा?

पी' का जप में राधे पुकारते सुना—बलिहारी! मेरे गुरुदेव! बढ़ाओ अपने चरण कि इन अश्रुओं से अभिषेक करूं। आओ आओ कि इन केशों से चंवर कर लूं। क्या उपहार दूं तुमको मेरे पास इस महामन्त्र की दीक्षा पा अब कुछ भी भेंट करने को न रहा।

जो नाम स्वामी का जीवन हो। जिसकी वह निरन्तर रट लगाते वन में काटों में डोलें। दिन रात पागल से 'राधा राधा' कहते घूमें। वह प्रिय नाम जो जड़ को चैतन्य कर, पक्षी को मोह ले, बदले मान वही मेरे स्वामी को एक मात्र वश करने में समर्थ है। अब तो उनके स्वामी का वश करने की युक्ति पता लग गई। कृष्ण के जीवन—विरह—का अवलम्ब—यह नाम—'राधा'-मिल गया।

बस मौन—ठीक ही है। परम रसिक और ब्रह्मवेत्ता श्री शुकदेव जी सब रहस्य बता भी, इस गुप्त मन्त्र को कहने संकोच कर गये। केवल कहा 'रा' और चुप हो गये। सो मैं कैसे अब कुछ कहूं सो अब आगे मौन!

५—चतुरानन ! तेरी चूक ।

प्रिय बहन !

'मोहन सों प्रीति करके, कहो कासों बोलना' ।

मीरा ने कहा—

ससार से मौन हो गई —और लगी प्यारे से करने बात ।

बात बहुत छोटी थी—बात बहुत लम्बी थी । कहानी खत्म ही न होने मे आती थी । आती भी कैसे—क्या न वह थी प्यारे की बात—प्यारी कहती गई—मैं पेड की आड़ मे छिपी सुना करी तुम अधी" न हो, जो सुना, गुनाती हूँ ।

[१] बहन ! तुमने ही तो कहा था, 'दर्द ले ही जीना सभव है' । एक साधन से ही वह साध्य सधता है । तुम्हारा उपदेश था—वही—

'मन्मना भव'

उसको इस हृदय मे ध्यान का जाल बिछाये कैदी बनाने को छिपी बैठी हूँ । हाँ उसी दिन से ....

'बडा छलिया है'—तुम कहती हो—हुआ करे—मेरा 'विरह' भी बडा रसिया है ।

'कौन ?'

क्या न बता चुकी उसका नाम—तो फिर सुन, इधर आ, पास कान ला—बस एक बार बताऊँगी—उसका नाम—सुन ·· ·····

'राधा'—

[२] यह क्या ! तू लडखडाने क्यो लगी । पर ठीक है—मन्त्र मे शक्ति होती है । फिर यदि महामन्त्र हो, तो कहना ही क्या ! शुकदेव ऐसे परम भागवत ने जिसे जपा—नही, नही मेरे स्वामी का नित्य निरन्तर जपने वाला मन्त्र—उसकी महिमा कैसे कहूँ ? बस जा—जपे जा, 'श्री राधे' और विचरे जा वृन्दावन मे । तुझे मिल जायेंगे गिरधर

नागर—तेरे जीवन का गीत पूरा हो जायेगा—सखी। विश्वास कर—श्रद्धा ही एक मात्र इस नाम का रूपए है।

[३] 'स्वामी! अब आये क्यों जाते हो? क्या जाते हो? छोड़ जाते हो! इन अंधियारे जीवन में दीपक जला कर न बुझाते जाओ! प्यारे! न विसराओ।'

"पगली! तू यह क्या कह रही है?" गोपिका ने विरहिणी की चेतन्य सहज समाधि भंग करदी। "क्या स्वप्न देख रही है?" यह प्रश्न सुन अपनी धुनि की पक्की विरहिणी ने अपने टूटे राग का ताना जारी किया।

'स्वप्न था। जो देखा स्वप्न था। तो हाय! वह क्या टूट गया। मैं क्या न मानी ही रह गई। स्वप्न देखती ही रह गई।

स्वप्न में तुम आये। यह कैसा आना। आकर फिर कैसा जाना। प्यार विरहिन का यह आना जाना नहीं सुहाना।

स्वप्न में तुम आये—कितनी प्रतीक्षा के बाद—कठिन परीक्षा के बाद। स्वप्न बन आये। मेरे स्वप्न मय जीवन में आये। हाय, ओ चित्त-चोर! तुम वह मेरा जीवन—वह स्वप्न भी मुझसे छीन कर ले गये।'

अब कैसे जीऊँ—क्या लेकर जीऊँ—कब तक जीऊँ—क्यों जीऊ?

मेरे लिये—मैंने सुन ली तेरी बात—जीऊगी, तेरे लिये जीऊगी—तेरा ध्यान न जीऊगी—अवश्य जीऊगी—बहुत जीऊगी—सदा मौन को प्यार करने वाली मैं जीऊगी! हां बहुत जीऊगी—तेरी प्रतीक्षा में जीऊगी—निराशा में तेरे मिलन की आशा ले जीऊगी—यही मेरे स्वामी का आदेश है—मैं जीऊगी—!

[४] वे आये, व चले गये—मुझे याद है। और जाते समय सोखी से अपने चरण चिन्ह मिटाते जाना मुझे याद है।

वह मोहनी मूरत मुझे याद है। वह त्रिभंगी अदा से कदम्ब का सहारा ले खड़े होना मुझे याद है।

वह मोर मुकुट, वह लकुटी और वह कधे की काली कमरिया मुझे याद है।

पीताम्बर के छोर का हवा में उडना—मुझे याद है। वह वसी की मधुर तान और यमुना का किनारा मुझे याद है। खूब याद है। उस मधुर मुस्कान मे मेरा दिल छीन ले जाना मुझे याद है।

मेरी आशाओ का चूर्ण होना—मुझ पर निराशा का पहाड टूट पडना—स्वामी मेरे! व्यथित हृदय को विलपती छोड जाना—और अदा मे मेरी सब उम्मीदो को ठुकरा जाना—स्वामी! फिर मुँह फेर के—ओ चित्त चोर! अपनी गठरी सम्भालते तेरा जाना मुझे याद है, खूब याद है।

स्वप्न मे तेरा आना—और मुझे जगा कर 'हाय कृष्ण!' की सामर्थ्य देकर चले जाना मुझे याद है।—'फिर भी कभी आना'—मेरा प्रार्थना करना और तेरा कनखियों से सकेत कर सुनी अनसुनी कर चले जाना मुझे याद है। तेरा चला जाना मुझे इस वन मे अकेली छोड जाना याद है।

[४] 'अकेला'—हूँ दुखिया हूँ—विरहिनी हूँ—भिखारिनी हूँ—क्या न आओगे श्याम ?

जगत ठुकराये बैठी हूँ—तुम्हारे मिलन की आशा ले इतजार करती यहाँ आन बैठी हूँ। क्या न आओगे श्याम!

भक्तवत्सल हो, दीन दयाल हो पतित पावन हो करुणा सागर हो जीवन आधार हो—मुझे वडे प्यारे लगते हो—क्या न आओगे श्याम!

जैसे भी हो आओ! घन बन आओ श्याम—मै मोर बनने की अभिलाषा ले बैठी हूँ।

ज्योतिर्मय दीपक बन आओ भगवान—मै पतग बन जलने को बैठी हूँ।

प्रेम बन आओ, प्रेमनिधि श्याम—मैं विरहिनी बडी आस लगाये बैठी हूँ।

प्यारे। तुम आओ ! जैसे भी हो आओ ! सताई हुई को और न सताओ तडपी को और न तडपाओ। जल्दी आओ—वायु से अधिक शीघ्रगामी हो आओ—बहुत शीघ्र आओ—मुझे न बिसराओ। श्याम आओ ! प्यारे आओ ।

[६] 'क्या वे न आयेंगे ?'

पर वे तो कह चुके हैं 'आऊँगा'। क्या सुनने में तो गलती न थी।

'आऊँगा अवश्य आऊँगा'—है—*यह कौन ?* मेरे हृदय से उठते प्रश्न का उत्तर देने वाला "तू" कौन ? निराशा के घन में विद्युत सा बन, आशा देने वाला 'तू' कौन ? फिर 'तू' कह वही बात—मेरे जीवन की बात—फिर मैं सुन लू, एक बार—वही तेरा प्रिय वाक् बस एक बार बस एक बार

पक्षी बन पेड की डाल पर जा बैठ—पर फैला चहचहाना, यह दे बस एक बार, वही जो 'तू' ने अभी कहा था—वही मेरा प्रिय वाक्—बस एक बार। बहती यमुना की लहर बन, उमड बस कह दे—वही सुहावना वाक् मुझे वह प्रिय लगता है। कहदे बस एक बार, बस एक बार।

मोर मुकट वाले, बन्सीधर, बनवारी ! तो क्या 'तू' न बोलेगा, तो फिर तू ही बता मैं कैसे आदेश पालन करूंगी। इस पथ के पथिक को कुछ तो सहारा चाहिये। हाँ, मुड कर औ जाते हुये श्याम ! कुछ तो कहता जा, बस एक बार बस एक बार।

यह दोनो सरोवर कहना नही मानते। लो फिर उमड आये और लगी मेरी जीवन नैया डगमगाने। क्या नाविक बन न आओगे ! क्या न बनोगे मेरी पतवार बस एक बार, बस एक बार।

[७] वह आशा आशा नही, जिसमे निराशा न हो। योग योग नही जिसमे वियोग न हो। वह मिलन कैसा जिसके साथ बिछुडने का

भय न लगा हो । दु ख के ताने व सुख के बाने से हो—तभी विधाता तूने यह सृष्टि पट रचा है । चतुरानन ! तू बडा चतुर है ।

चतुरानन ! तूने तो जाल बिछा दिया । सुन्दरश्याम को वह न सुहाया । उसी की ओट ले लगा वह आँखमिचौनी खेलने । रोने-रुलाने, तडपने-तडपाने । तुम ऐसे चकित क्या यह सुन कर हो गए !

ठीक है वह ज्ञानानन्द स्वरूप है—कूटस्थ है—परम चैतन्य है—परमानद स्वरूप है । पर कब होता है, उसको सतोष उस आनद से । पूर्णानंद जब अपूर्ण हो विचरे, तब पूर्ण का सुख अनुभव करे । पूर्ण होते भी इसी अपूर्णता के अभाव से वह अपना जीवन सुखमय न प्रतीत कर चलता है दु ख की खोज मे । यहाँ माया की गोद में । उसी चादर को ओढने चलता है, जिसकी चतुर्मुख तू देख रख करता है । पूर्ण ब्रह्म अवतार लेता है—लीला करता है—रोता है—रुलाता है ।

विरह बिन मेरे स्वामी का जीवन फीका है । तभी वह खोजता निरन्तर—क्या—मैया राधे की गोद । वही केवल वही सुख मानता है । वही लाला प्रारम्भ होती है । कौन सी—कृष्ण की गोद म पडी राधे पुकारती है प्रियतम कहा हो और अधीर व्याकुल हो राधे की गोद म पडे वे पुकारते हैं 'ह श्री राधे ! ह रास रासेश्वरी !—

[८] सच पूछो तो शब्द तो कवल यही है ! 'राधे—कृष्ण । परम भाव स्वरूप है । लीला निमित्त ही एक प्रणव रूप होत भी दो भासत ह ।

मेरी कहानी शब्दा की झकार नही—व्यथित हृदय की पुकार है । इसके अतिरिक्त हो भी क्या सकती थी । क्योकि सब शब्दो का प्रतिपाद मेरा स्वामी है । और सब कम उसी के निमित्त है ।

कोई न समझे तो क्या करिये । मूढ यह बहुमूल्य प्रभु का अपण करने वाला जल इन दोनो कमण्डलो से यदि ससार-सम्बधियो के स्नेह व आसक्ति पर उढल डाल तो क्या करिय । अनधिकारी हैं—अल्प बुद्धि है । प्रभु उनको समझ दें ।

पुकारे जा वही नाम—सुन्दर नाम—पपीहे का बताया नाम—यही जीवन का फल है

हे श्री राधे !' 'हे श्री राधे !' यह कौन ? ठीक है, मुझे चेतावनी देने आई यह ध्वनि । मै ज्ञान की गठरी बाधने लगी थी। कैसा सुन्दर नाम, इसने सब हो उस कूडे को गठरी समेत भस्म कर दिया। आग है, आग यह प्यारी जी का नाम । जीव ! जो तू अपना कल्याण चाहे तो इसे निरतर जपे जा, हा जपे जा यही नाम—

'हे श्री राधे'—

६—प्यारे के प्यारों की खोज में !

प्रिय बहन !

और जो वे न मिले तो खोज करूँगी। मन्दिरो मे खोज करूँगी: मस्जिदो मे सर पटकूँगी। तीर्थो मे भटकूँगी, हाँ नगे पैर—पैर तो उनसे मिलने के ही लिये हैं, और हाथ भिक्षा करने के लिये। हा फकीर बन कर चलेंगे। यह नुस्खा बहुत दिन से मैंने सुन रखा है। अभी आजमाया नहीं। समय अभी नही आया—सो चादर की छोर मे बाँध रखा है। भला कौन सा !

'जो बन के फकीरा फिरेंगे हम तुझे ढूँढ मिलेंगे वहीं न कहो।,

दवा सेवन से पहले पथ्य रखना होता है। कब तक ? जब तक कि यहाँ से निराशा न हो जाय ;

चलूँगी बहन ! अवश्य चलूँगी। तुमको साथ लेकर चलूँगी। अनन्य भक्त का सग लाभदायक होता है। निराशा आने नही देता। आशा झलकाता रहता है। चलूँगी, प्यारे के प्यारे सतो की खोज मे चलूँगी। देर बस यही है—विरह तीव्र नही—वह प्रज्वलित और फिर न किसी से पूछना न गछना। वही पथ प्रदर्शक बन रास्ता दिखलाता चलेगा। देखो ! सामने कौन जा रही है। चलो उसकी कहानी सुनें। कहानी मुझे बडी प्रिय है।

(१) है ! कौन ? वही विरहिनी। वही अटपटी चाल। वही बिखरे केश। वही बहते नेत्र। वही पीताम्बर का-सा रँगा शरीर। कहाँ जा रही है, प्यारी ?

गोपिका का प्रश्न सुन विरहिनी बोली

'प्यारे के प्यारों की खोज में,

और बिना रुके बढती चली।

वे कहा रहते हैं ? मुझे भी बताती जा।

नर्वम्न प्यारे के घ्यान में। विरहिनी ने उत्तर दिया।

गोपिका बोली—उनका सादन नहीं पूछती। स्थान जानना चाहती हूँ।

स्वामी के हृदय मन्दिर में। विरहिनी ने कहा।

गोपिका ने कहा—मैं पूछती हूँ, उनका शरीर कहाँ निवास करता है।

'खोज जा' यह कह गोपिका को छोड चल दी।

[२] सब ही जगह तो खोज चुकी। पहाडो की कन्दराओं, समुद्र के तट, नदी किनारे सब ही जगह ता भटक चुकी, सारा जग ढूँढ चुकी—'कोई राधे श्याम से मिलादे मुझे, कहती वृन्दावन में आ निकली।

यहाँ भी गीता—भागवत पढा। पुराणों का अध्ययन किया। उपदेश लिये। कान फुकवाये। कथा सुनी। कीर्तन किये पर……

कठोर तप किया। सब से नाता तोड मौन रही। पूजा और

'ग्राशा —यह शब्द सुन कर सिर क्या हिलाते हो ? अच्छा याद आ गया तुम्हारा उपदेश ! याद आ गया तुम्हारा वादा श्याम ! तुम कह चुके हो—'आऊँगा अवश्य आऊँगा !'

जब जब निरागिया का प्रभु के अतिरिक्त चाह रखने वाला का सग करती हूँ—मेरी श्रद्धा शिथिल हो जाती है, तुम्हारा प्रण भूल जाती हूँ। माला पाठ पूजन सब त्याग बैठती हूँ। प्रभु ! अब श्रद्धा-युक्त हो तुम्हारे आने की प्रतीक्षा करु गी। मुझे विश्वास है तुम आओगे, अवश्य आओगे। और आने म तुमको भय ही क्या। त्रैलोक म एक मात्र तुम ही पुरुष हो। हे पुरुषोत्तम ! मुझे विश्वास हो गया, तुम आओगे अवश्य आओगे।

[४] कौन कहता है, वह नहीं मिलता है। मिलता है, अवश्य मिलता है। तृषा होती है, पानी मिलता है। भूख होती है, खाना मिलता है। दद होता है वैद्य मिलता है।

फिर यह निराशा क्या? 'खोज करो। विश्वास रखो वह मिलता है। सबन मिलता है। कु जो मे मिलता है। वन म मिलता है। घर म मिलता है—हृदय मे मिलता है। प्रत्यक्ष हो यमुना तट पर मिलता है। विश्वास करो वह मिलता है।

अमावस्या की अधियारी रात म मिलता है। पूर्णिमा की चादनी म मिलता है। दिन म मिलता है। रात म मिलता है। विश्वास करो वह मिलता है।

बुलाने पर वह मिलता है। व बुलाये वह मिलता है। जब वह मिलता है खूब मिलता है।

कैम कह वह कैसे मिलता है !

[५ कुमार बन बूढे को सहारा देता मिलता है। युवतिया के सग रास रचाता मिलता है। बूढा बन बालक का सहारा खोजता मिलता है।

गाता मिलता है। हसता मिलता है। ज्ञानोपदेश करता मिलता है। भक्ति का पाठ सुनाते मिलता है। समाधि लगाते वह मिलता है। हर जगह हर ही समय तो वह मिलता है, पर

कैसे कहें, वह कैसे मिलता है। कहना तो बस इतना ही है, विश्वास करो वह मिलता है।

[६] उसके मिलने का ढंग निराला है। कौन कहे वह कैसे मिलता है। करोड़ो वर्षो के तप मे जो न मिलता, पापी अजामिल की एक पुकार पर वह आ मिलता है। देवताओं को जिसके दर्शन दुर्लभ हैं, पशु गजेन्द्र की एक पुकार पर वह आ मिलता है। यह नहीं बन में विचरने से वह मिलता है; यह नही सन्यास धारण करने से वह मिलता है, बीच सभा म महारानी द्रौपदी की आतुर पुकार पर वह आ मिलता है। केवल यही जानती हूँ, वह मिलता है। नहीं जानती तो यही नहीं जानती—वह कैसे मिलता है।

तू अपनी पवित्रता का अहंकार मत कर योगी! वह पतितो को भी मिलता है। वह सबको मिलता है।

अपनी जाति का तू अभिमान त्याग—चमार, कसाई, जुलाहे धोबी, दर्जी, जाट, पठान सब को वह मिलता है।

स्त्री—पुरुष, बालक—वृद्ध सबको मिलता है। और जब मिलता है, खूब मिलता है। विश्वास रख वह मिलता है।

कैसे मिलता है' कैसे कहूँ। कहाँ मिलता है। क्या बताऊ कहा मिलता है।

'खोज किए जा' । वह मिलता है। पुकारे जा वह मिलता है। अवश्य मिलता है। विश्वास रख वह मिलता है। खूब मिलता है। अवश्य मिलता है।

[८] खोज करती चली।' प्यारेकी, खोज करती चली। अपनी नाव श्रद्धा को पतवार मे खेती चली। भूखी चली। प्यासी चली। थकी—मादी चली। उसके विरह को साथ ले चली। विरहिनी चली। अपना धन साथ लेकर चली। सब ही तो साथ थे। विरह सा पथ प्रदर्शक था और किसकी खोज करती। आसू सी सामग्री था क्यों और चन्दन पुष्प की खोज करती। आह सा दीपक था और आरती की क्यों खोज करती। तड़प का

से मिन्न था, अपने पथ प्रदर्शक के गले मे हाथ डाल वह चली। तुम्हारे वादे को याद कर वह चली। तुम्हारी खोज में वह चली। तुम मिलते हो, अवश्य मिलते हो आश्वासन पा वह चली। प्यारे से मिलने को वह चली।

[९] 'खोज कैसे होती है ?'

,हो जाती है।' और आज तक तू करती ही क्या आई है। विरहिनी से वह पूछने लगी—उसका साधन ?

मिल तो गया—मन साधने को 'नाम'—हृदय साधने को विरह—और कर्म साधने,को खोज। जैसा स्वभाव होता है, वैसा ही जीव लक्ष बनाता है। उसके अनुसार साधन करना होता है। क्षत्रिय अर्जुन को कर्म योग का उपदेश दे—गीताचार्य भगवान ने अपने गुरू, पितामह आदि को मारने का आदेश दिया। उन्ही श्यामसुन्दर ने 'गृहासक्त' गोपिकाओं को जब पति की सेवा करने का उपदेश शुरू किया—'तो वह अपने पति श्यामसुन्दर से पूछने लगी—जगत के पति तुम्हारे सिवा हम आत्म निवेदन करे हुई सेविकाओ का और कौन पति है। तुम्हारे चरणो के अतिरिक्त हमारा कौन सा गृह है। आचार्य शिष्य बन गए और लगे भजने अपने भजने वाला को। वही मन्त्र, क्या भूल गय रा •••'

फिर क्या साधन कहूँ। साध्य जिसके पास, नही नही साध्य का जीवन—विरह—उनका मन्त्र— •••' जिसके पास हो— क्या उसकी खोज के लिये और सामग्री की जरूरत है। श्रद्धा तो एक स्वाभाविक चीज है। जीव उसे लेकर जन्मता है। साधन से वह प्राप्त नहीं—सो फिर कहती हूँ—वही बात बार बार—

[१०] कैसे चली—कहा चली—क्या चली—प्रश्न करना व्यर्थ है— इतना ही जान लो वह चली—प्यारे की खोज मे चली—विश्वास की पतवार से खेती चली—विरह से प्रेरी वह चली—प्रियतम की खोज मे वह चली—हाँ उस पार—उस पार प्रियतम से मिलने वह चली।

७—तेरे दर्शन—मेरा जीवन !

प्रिय बहन !

मेरे अंधियारे जीवन मे कोई दीपक न बार सका । आज तक अन्धकार में बैठी हूँ । अपनी मुझे परवाह नहीं । चिन्ता है तो केवल यही, यदि वे आवे, तो अंधियारे मे कहीं लग न जाए । तुम हंसी क्यो ? मेरी मूढ़ता पर—इतना ज्ञान न होने पर कि वे स्वयं प्रकाश है । क्षमा करें—उनके लिये ! योगीश्वरो के ईश्वर, चराचर के नायक त्रिलोक के आधार, पूर्णब्रह्म ! हमे न उनके ऐश्वर्य की चाह है, न विश्वरूप देखने की लालसा । कौन उस रूप मे उलझे और आलिगन चुम्बन के सुख से वंचित रहे ।

हम तो चाहिए वही दो हाथ वाला—

कृष्ण कन्हैया, बंसी बजैया, गउवें चरैया—

हर हरे

(१) तेरा दर्शन—मेरा जीवन । तेरी खोज—मेरा साधन । तेरा भजन—मेरा भोजन ।

कथा सुनती हूँ—सत्संग में जा बैठती हूँ—कीर्तन मे विह्वल हो जाती हूँ । सब कुछ है, त्यागी ! फिर भी तू नही रीझता । तू कहता है 'मेरी कृपा का कुंजी मेरे सन्तो के हाथ'—बता तू ही उनकी पहचान—कहाँ उन्हे पाऊं ?

'खोजे जा'—यह तुम्हारा उपदेश तो अनेक बार बरता । क्या लाभ इस औषधि के सेवन से—दर्द बढ़ता ही गया, ज्यो ज्यो दवा की'—

सिर हिलाने से काम न चलेगा—'मेरा मिलना सुलभ—' मेरे प्यारे का मिलना दुर्लभ—' कह मुझ से छूट कर न जा सकोगे—बताना ही पड़ेगा—वह महामन्त्र, अपने प्यारो की पहचान—वह पुकार, जिसे पुकार में उन्हे पा सकूं ।

[२] सत बडे दयालु होते है--करुणासागर होते है। मब और केवल जिनको मेरा स्वामी ही निरनर दरसे, मोह से न मोहित होने वाले, दोप तो किसी मे देखना जानते ही नही—सच्ची जिज्ञासा, आतुर पुकार, तीव्र आह की जजीर मे जब चाहो उन्हें बाध लो--उनको अगर कुछ नही सुहाता तो वह है 'कपट'—निष्कपट हो उनके सामने अपना हृदय खोल दो। और वे स्वामी के हाथ मे तुम्हारा हाथ दगे।

[३] 'सत पतित पावन होते है'। विरोधी उनके मिलने का है कपट —तव तो पहचान मिल गई—मैं 'पतित हूँ ही अधिकारिणी भी हो गई—निष्कपट हो विरह का आश्रय ले उनसे अपनी कहानी कहूँगी। वे सुनेंगे और प्यारे से मुझे मिला दगे। युगो से विछुडी, मै अपने स्वामी की गोद म जा बैठूँगी। नीरस जीवन रसमय हो जायेगा। कुम्हलाया फूल फिर खिल उठेगा।'

विरहिनी कैसी बहकी सी बात कर रही है—प्रकृति के विपरीत—अरी! कही मुर्दा भी जीता सुना है। कुम्हलाया फूल खिलते देखा है—गोपिका प्रश्न कर बैठी।

जिसको तू जीता मानती है--मेरे स्वामी मे विमुख ससार मे आसक्त, वह तो सदा ही मुर्दा है। [ऐसा मुर्दा न मरता है, न जीता है। अपने विरही के सग आख मिचौनी का खेल—उनका वियोग उसे मारता और सयोग जिलाता है। प्रभु के विरह मे नित्य मरने वाले प्रेमी जन की सजनीवी है, सत कृपा दृष्टि'--वह पडी और मुर्दा जिया।

[४] 'प्यारे के प्यारो की खोज —प्यारे की खोज से कुछ कम मुश्किल नही--थी तो अभी वालिका—पर विरहिनी दृढता व श्रद्धा की तो मूर्ति ही थी—तभी वह आरुढ हो चल दी खोज मे—कहाँ ?—बहुत दूर—यह भी न विचारा रास्ता कठिन है--लम्बा है—भूखी, प्यासी, नगे पाव वह चल दी। न रात का भान, न दिन का ख्याल-वह पुकारती, वही पुरानी पुकार—कहाँ हो राधेश्याम! दर्शन दो ओ श्यामाश्याम!

एक दिन बाद वह समुद्र तट पर पहुची--अपने प्यारे की द्वारिका नगरी म। अनुराग लीला का काण्ड खत्म कर— मेरे स्वामी पतित

पावन ऐश्वर्य माधुर्य मिश्रित नाना करन यही पधारे थे। यही स्वामी ने विप्र सुदामा क चरण अपन नेत्रो क जल स धोये थे। यही अर्जुन स शरणागत को भक्तवत्सल भगवान न सारथ्य ग्रहण किया था। यही रुक्मणी को अपनी अर्धाङ्गिनी बनाया था—यही अपने भक्तो के वैरी दुर्योधन को अपनी नारायणी सेना का दान दिया था। यही अर्जुन को सुभद्रा सी बहन दे भक्तवत्सलता का परिचय दिया था और बधिक को बाण खा उसे अपने धाम सशरीर पठाया था।

यह तो वही द्वारका है जहा सदा ही प्रभु अपनी वही लीला करते हैं—मीरा को अपने म समा लेते हैं—नाम देव का मन हरते हैं—और पीपा व नरसी महता को

किस विचार म मग्न है बेटी?—विरहिनी ने मुड कर देखा तो स्वामी जी पीछे खडे थे। वह बोली—

'प्यार क प्यारो की लीला याद आ गई—उसी का अनुकरण किया चाहती हूँ।

क्या? जरा मै भी तो सुनूं—स्वामी जी बोले। जैसे पीपा जी ने स्वामी के दर्शन पाये थे।—वैसे ही समुद्र म कूद उनकी द्वारिका म पहुच दर्शन किया चहती हूँ—विरहिनी बोली—

फिर भी यदि वे न मिले तब! स्वामी जी ने प्रश्न किया। 'कहानी समाप्त हो जायगी तब! विरहिनी बोली।

भय स करते बेटी! शरीर कर्मजनित है। इसके नाश से कर्म का नाश नही—कर्म भोग म तो परम भागवतो का भी छुटकारा नही—अकाल मृत्यु का परिणाम अच्छा नही। स्वामी जी बोले।

तो फिर क्या करूं?—विरहिनी पूछने लगी।

खोज कर—स्वामी जी बोले!

कब तक—वह पूछने लगी।

पीताम्बर का छोर झलका बंसी की ध्वनि कहती सुनाइ पडी जब तक

[५] विरहिनी जब मूर्छा स चेती तो वहा स्वामी जी को न पाया। विचार मग्न बैठी थी किसी सत सखी ने हाथ जोड प्रार्थना की माता!

इस पतित का भी उद्धार करो । इस गृहासवन का आथित्य स्वीकार करो करुणामई मैया पधारो—सब ही बालक तुम्हारे मुख में भोजन का कौर देने को आतुर है ।" ···(उसका कंठ भर आया, आगे वह चलीं । कुछ आगे न कह सका । विरहिनी के चरण पर गिर पड़ा ।)

'पिता जी ! इस परदेसिनि, पतिता पर, प्रभो ! क्यों ऐसी दया आई—चलो, अवश्य चलो-मुझे अपनी चरण-रज धारण कर परम पवित्र होने का अवसर दो"

'नटवर ! तेरी लीला विचित्र है'—विचार मग्न विरहिनी साथ हो ली ।

[६] आई थी श्याम की खोज मे—उनकी द्वारका नगरी आई थी—वैसे ही जैसे मेरे स्वामी को प्यारों की पुकार बुला लाई थी । हाँ मथुरा से यहाँ लाई थी । मैं भी उनकी रासस्थली छोड़ आई थी । वहाँ वह अपने राम मे ऐसे भूले रहते है और अनन्य भक्त शिरोमणि गोपिकाओं से—जिन मुक्तात्माओं मे कर्म की लेश मात्र गंध नहीं—ऐसे घिरे रहते हैं, कि पतितो का अभाव होने से उनका ध्यान उनकी ओर जाता ही नहीं । मैं पतिता इसी आशा को साथ ले आई थी कि अब शीघ्र मेरी पुकार सुनगे । इसीलिए आई थी ।

जब सब ही ने मेरे जख्मो को धोने, सेकने से मुख मोड लिया—हाथ खीच लिए—हा सब ही वृन्दावन के सन्तों ने—तब ही मैं आई थी । प्यारे को अपनी दु:ख भरी गाथा सुनाने आई थी ।

मीरा भी तो आई थी —हाँ रणछोड़ जी ! तुम्हारी चौखट पर आई थी । दुखिया दु:ख ले आई थी—वृन्दावन से आई थी । स्वामी । बड़ी आशा ले आई थी—ते री द्वारका पुरी मे मीरा आई थी ।

हा मुझे खूब याद है—खूब याद है—इसी मन्दिर मे उसने मुझे अपनी आकुल व्यथा सुनाई थी—और तूने ···तुझ ही में वह समाई थी ।

उसका सुन्दर स्वप्न—वह पूरा करने आई थी—मैं भी प्यारे आई हूँ । स्वप्न में तुझ से मिल कर बिछुड़ी आई हूँ ।—मेरे स्वामी ! मै

मी आई हूं—अपना स्वप्न फिर देखने आई है । तुम्हें फिर कंठ लगाने आई है" ·· ··

[७] कैसा स्वप्न ? कैसा प्रभु को कंठ लगाना ? छोटा मुंह बड़ी बात ! यह कौन है ? यहां मन्दिर में क्या धुन आई है ? बिना पूछे क्या आई है ? पुजारी को विरहिनी का भगवान से बहुत निकट रहते हो ऐसी बातचीत करना न सुहाया । धीमे से ताड़ना देने का साहस किया था कि उसके तेज से वह शिथिल पड़ गया । और कुछ विचार कर, कंठ पर माला पहनाते कहा 'माता ! यह प्रभु की प्रसादी है । आप यहाँ स्वामी का प्रसाद पायेंगी, जाइयेगा नहीं ।'—

"स्वामी सखियो गोपिकाओं के मनोरंजन वाला काण्ड समाप्त कर तुम यहां आये हो । अनाथनी मेरी भी बालाओं के आंसू पोंछने आये हो । यहां तुम बांह छुड़ा न जा पाओगे । जाओगे तो पतित-पावन न कहलाओगे । यहां रास का बहाना कर छोड़ जाओगे तो गोपीनाथ ! अनाथा के नाथ न कहलाओगे !" ·····

'सुननी ही पड़गी कुछ दुखिया की कहानी-लम्बी सही—रात खतम हो गई—मेरी कहानी न खतम हुई—तो क्या न सुनोगे—रास करते तो श्याम ! तुम न उकताते थे फिर मेरी कहानी कैसे अधूरी छोड़ जाओगे—नहीं, नहीं, कदापि नहीं"'

अपने विलाप में मग्न विरहिनी ने जब पुजारी की प्रार्थना न सुनी—और प्रभु के शयन का समय आ गया तो सतसेवी ने उन्हें चेताया–विरहिनी कुछ विचारती वहां से चल दी ।

[८] कैसा खाना पीना, कैसा शयन विश्राम ? तुम तो मिले ही नहीं-क्या करूं, तू ही बता । वृन्दावन 'ही' में तुम मिलते हो । सब अनुभवी महात्माओं ने वृन्दावन त्यागने को मना किया था । जीवन की अवधि बीतती जा रही थी–कोई तेरा प्यारा न मिलता था ' पर हां मिला–विरह से व्याकुल एक बालक—तेरी याद में भटकती एक बालिका—उन का सहारा पा हो मैं पड़ी रही । जिसने जहां जहां मानवहां, तुम्हें लाजा—

वन में, यमुना पुलिन पर,कुंजों मे। पर सदा ही तो आशा ले गई, निराशा ले लौटी।

केश श्वेत हो चले थे—शरीर जवाब देने वाला था—दिन बीते जा रहे थे,पर तू न मिलता था। जिस को जो हो' गोलोक हो—स्वर्ग हो—मुझ पतित को तो वृन्दावन वन ही था। कैसे मान लेती उससे विशेष कोई स्थल नही है। जब सब 'साक्षात्कार हमने किया' वह विचरने वालों को प्रियतम तक अपनी पुकार, अपनी प्रार्थना पहुँचाने मे असमर्थ हो पाया—रास देखो, दर्शन करो, कथा सुनो, परिक्रमा करो, जाप करो, यमुना स्नान करो—समय आने पर वह मिलते हैं—महात्माओं ने इससे आगे कुछ और न बताया। मिलते होंगे—जिसको मिलते होंगे—कुछ 'करने' से 'ही' वे मिलते है—मेरे हृदय ने गवाही न दी। और देता कैसे—जब वे स्वयं कह चुके—'मैं जप, तप, पाठ, पूजा से नही मिलता—जब मिलता हूँ,खूब मिलता हूँ—अवश्य में मिलता हूँ। पर कोई नही कह सकता, 'मै कैसे मिलता हूँ।'

तड़प किसको नही भटकाती—विरह को मारी कहा दर्द की दवा खोजने नही जाती—जीवन जा रहा है—क्षण-भंगुर है—दुर्लभ है—फिर कब तक समय की प्रतीक्षा करती बैठी रहूँगी—पर करूं भी क्या ?

'खोज कर'—हैं ! मेरे मन मन्दिर के बासी-बलिहारी ! अवश्य करूंगी—खोज करूंगी—अब तो तेरी आज्ञा मिल गई।

आदेश पा विरहिनी द्वारिका पधारी थी —

———

८—शाम आई, श्याम न आया ।

प्रिय बहिन !

कहानी समाप्त हो गई । नहीं बहुत लम्बी है । अधूरी रह गई । विरह की गाथा मे निराले नेम होते हैं । न कहो तो हृदय फुक जाय, कहो तो जबान जल गई कुछ ऐसी ठान न कहूँगी नहीं-नहीं विरहिनी की गाथा गोपिका को सुहाती है, कहूँगी—हाँ जब सुनूँगी—जब कहूँगी—जब वह मिलेगी—तब तब मैं सुनूँगी—कब कहाँ कौन जाने । अभी तो हाथ ही नही आती मुख ही नही दिखलाती है । विश्वास न हो तो देख लो उसके पास जाकर ।

(१) 'कौन !'

मुझ से प्रश्न करने वाला तू कौन—मुड कर देखा कोई न था—मैं आगे चढ चली—

'क्या छेड़े जाती है । विरह एकात म सया जाता है ।'

मैने मुड कर देखा कोई न था ।

(२) वन था—गोमती का किनारा था—वृक्ष था—एक झोपडी थी—घास का बिछौना था—मिट्टी के करवे मे जल था—मैंने घूर घूर चारो ओर देखा—

मेरा अधीर हृदय कपित हो पूँछ बैठा, 'क्या देखा ? विरहिनी का घर देखा—' 'और ! उसका सामान देखा पर उसको न देखा ।

(३) तुम कह गय थे—आऊँगा—अवश्य आऊँगा—अब क्या देर, क्या विचार—

'दर्शन दो मेरे श्याम —

'कौन'—मैंने पूछा

विरहिनी की पुकार—बहती हवा मेरे कान म कह गई । बहुत ढूँढा, उसको न पाया ।

(४) 'शाम को आता है—दूध लाता है—उसको पिलाता है'। गाँव वालों ने कहा—छोटा सा है—बालक है—गऊ साथ ले आता है।

'फिर मैंने पूछा

'कौन जाने—कैसे जाने ?' वह बोला

'क्यो ?'—मैंने प्रश्न किया—

क्यों मेरा प्रश्न पेड़ से टकरा लौट आया—वहाँ कोई न था—।

(५) वन में भटकी—उसको न पाया—पाया तो उसकी वही व्यथित हृदय की पुकार—पहाड़ों की कन्दराओं में—बहती नदियों की लहरों में—वृक्षों में—सब में सुनी—दिन में सुनी—रात में सुनी—निरन्तर सुनी—सर्वत्र सुनी—केवल वही पुकार—

दर्शन दो श्याम—बस एक बार—बस एक बार—

(६) यात्री की यात्रा समाप्त हो गई—मंत्र मिल गया—मृगछाला ओढ़े—धूनी रमाये वह बैठी—एकांत में—वन में—मौन···

पर बोलता है, उसका रोम रोम। क्या ? वही विरहिनी की पुकार—

दर्शन दो श्याम—बस एक बार—बस एक बार—

———

तेरी द्वारिका नगरी में

द्वितीय खण्ड

कृष्ण हैं—! मिलता है—! मिला है—!

प्रिय बहन !

चाहने से मौत नहीं आती—वियोगी के प्राण कठिनता से निकलते हैं। क्या ! प्रभु के गले का हार—पुष्पों की माला—प्रभु से वियोग प्राप्त कर— मैं शीघ्र रजकण में मिल जाऊं—मर जाऊं—कि प्यारे के चरण शायद कभी मुझ पर पड़ जायें—क्या नहा चाहती—मरना चाहती मौत नहीं आती। कुम्हलाने—फिर यमुना में फेंकने—फिर किनारे लगने—रज में मिल, रज होने मे समय लगता है। जिस मौत को पा उनसे मिलन होता है हमार चाहने से नहीं आती। समय पर आती है। बड़े काल बाद आती है। मृत्यु दुस्वार है ता है नाथ ! इस जीवन को क्यो पहली बनाना था पहेली बना उसम उलझाना न था। तू ही बता अब कसे सुलझू तो करू क्या ? उनका जीवन जिसको माता है। तब ही तो मागती हूँ—मौत—बहन ! यह सुनी विरहिनी की मांग—अभी होश म है—ससार भासता है सो मांगती हूँ— मौत —ला फिर पागलपन ने आन घेरा—अपनी पुरानी रट—हां कहानी फिर शुरू कर दी—क्या— ।

{९} क्या न आओगे श्याम !

क्या आने लगे—ओ वकुण्ठ वासी ! इस मृत्युलोक वासिनीं के पास प्रकाश कालिमा के पास आये, दूषित न हो जायेगा ! हैं ! तुमने यह ऊपर सकेत कैसा किया—मैं जान गई—चन्द्रमा धारण किये है कालिमा—वह कलकित होने से नही घबराता ! हैं ! तुमने यह नीचे सकेत कैसा किया—मैं जान गई– व्यक्ति परछाई का सग नही त्यागता, साथ से चलता है।

हैं ! मेरी गीता जी की ओर सकेत कैसा—मुझे याद आगई तुम्हारी कही बात—सब की आत्मा—मैं ही मृत्यु भी हूँ ।

प्यारे! यह ढंग तुमने कहाँ सीखा—न तो मिलते ही हो—न निराश हो जीवन ही त्यागने देते हो—आशा पीछे लगा देते हो—उलझाये रहते हो—मुझे तड़पता देख—तुम्हे क्या सुख मिलता है—क्यो रुलाते हो—अपने विरही से ससार तो पहले ही त्याग कराते हो—अपनी 'चाह' पीछे लगा भटकाते हो—न मिलते हो—न मिलने की राह बताते हो। कुछ तो न्याय करो—वह बेचारी क्या ले जिये—न जिये तो करे क्या—मरने तुम देते नही हो—देते हो, तो सग की वस वही अपनी पुकार—'कहा गये श्याम—क्या न आओगे श्याम—दर्शन दो श्याम—बस एक बार—बस एक बार।

[२] निर्भय रहती है—जहाँ भी रहती है—तुझको चाहने वाली निर्भय रहती है। भूख प्यास, गर्मी सर्दी, आंधी बरसात सब ही में निर्भय रहती है। घर मे रहे, या वन मे—एकान्त में रहती है—अकेली रहती है मौन रहती है—हा ससारी सग से दूर रहती है।

[३] 'तेरी प्यारी—एकात वासी—अकेली रहती है'—मैं सुन चुकी थी—पर मुझ से सत्सग बिना रहा न जाता था—फिर उसकी 'प्यारी' कैसे बन पाऊगी ?

'कभी न देखा, न सुना' बिना कुछ लिये' भी कोई विरहिनी रह सकती है।

'अवश्य रह सकती है—रहती है—द्वारका नगर मे रहती है—' शब्द मेरे कान मे पडे—मै बिना सिर उठाये पूछ बैठी—"तो वह क्या 'ले' रहती है ?"

'प्यारे का ध्यान'—आगे कुछ न सुन पाई।

'विरहिनी वन मे रहती है—अकेली रहती है।' यह सुना था, तभी प्रश्न उठा था—'क्या ले रहती है'—और उत्तर मिल गया।

'विरहिनी एकान्त मे रहती है—अकेली रहती है-'प्यारे का ध्यान'' ले रहती है।'

[४] इसमें आश्चर्य ही क्या है—निरन्तर, एकान्त, अनन्य ध्यान मे महान शक्ति है। कीट भृ गी का ध्यान कर भृ गी हो जाती है। तभी यह योगी ध्यान समाधि लगा, सायुज मोक्ष प्राप्त करते है। तभी मेरे स्वामी ने गुह्यतम उपदेश यही किया—

'मन्मना भव' ।

'ध्यान मे वडी शक्ति होती है। निरन्तर अनन्य सब ओर से मुख मोड कर ध्यान सावरे रसिया को उलझाने की शक्ति रखता है ।'
·· ······ सुनाई पडा—

'तुम कौन ?' मैं पूछ बैठी—।

स्वामी जी पत्तो की ओट से निकल आये—और मेरे कन्धे पर हाथ रख बोले—सुन लिया ! अब प्रमाण' देख सामने वह कौन ?

गईयो के साथ एक बालक काधे पर कारी कमरिया डारे—सिर पर मटकी रखे जा रहा है। हा वडी तेजी से जा रहा है !

कहा जा रहा है—स्वामी जी ने पूछा।

अभी उधर—'विरहनी की कुटिया की ओर।'

समझी ! यह है सावरे रसिया—और चले आ रहे हैं, ध्यान की रस्सी मे बधे, खिचे ··

कौन ! मेरे स्वामी ! मेरे स्वामी क्या तुम आ गए श्याम ! मैं जब चेती कुछ न पाया—न स्वामी जी—न कुटिया न वह। वहती हवा ने कान म कहा—

विरहिनी अकेली रहती है—एकान्त मे रहती है—निर्भय रहती है—प्यारे के निरन्तर 'ध्यान' में रहती है

[५] 'विरहिनी से जब से विछुडी, चैन न पाया'—गोपिका विचार करने लगी—कोई तो हो, जिसको विरह की कथा सुना जीऊ'। पता लगाते लगाते यहा आई। कुटिया अवश्य मिली—विरहनी न मिली।

कही सन्तो की सभा मे न बैठी हो··· · ·

[६] श्रोताओ ! सब शास्त्रो का निचोड, सन्तों का उपदेश, सब तत्त्वदर्शियो का अनुभव केवल इतना ही है,

'कृष्ण है। मिलता है। मिला है।'

गोपिका बीच मे पूछ बैठी—किसको मिला है ?

वक्ता मुस्काते बोले—विरहिनी को

हैं। कौन ? स्वामी जी !' यह गोपिका चरणो पर गिर पडी। गिडगिडाती बोली—'कहा मिला है ? स्वामी जी !'

'एकान्त मे'—स्वामी जी ने उत्तर दिया ! वेटी ! सब सन्त-संग का फल है, सन्त-सङ्ग । वह सङ्ग सदा प्राप्त भी अप्राप्त है। पास रहते भी अति दूर है । जीव स्वभाव ले जन्मता है । कालान्तर की वासना, काम-क्रोध लोभ आदि उस सत्त को आच्छादित किए रहते हैं । तीव्र एकान्तिक निरन्तर अनन्य ध्यान से उत्पन्न विरह जब ऊसे भस्म करता है—तो प्रतिबन्धक नाश होते ही स्वामी से भेंट होती है अन्तर, बाहर, सर्वत्र सब समय ।

प्रभो ! कैसे हाथ आये यह विरह ।

'पुकारे जा'—स्वामी जी बोले ।

'क्या' ?

वही पुकार—'दर्शन दो श्याम—बस एक बार—बस एक बार।'

[७] स्वामी जी यह क्या कह गये—सब शास्त्रो का निचोड़—सब उपदेशों का सार केवल इतना ही है, 'तू है'—यह कौन नहीं जानता—यदि यही तत्त्व अन्त मे सब जप, तप, पाठ, पूजा, भक्ति, कर्म ज्ञान, अष्टाग, हठ लय, शब्द योग के बाद प्राप्त होता है—तो जीव व्यर्थ कठोर तप करता है । यह गुह्यतम रहस्य स्वामी जी कहते हैं कैसे हो सकता है·······'

'बेटी ! 'हो सकने' का सवाल नही । निश्चित, है 'है' । तत्त्वदर्शियों ने इसमे परे कुछ और अनुभव नही किया । अन्त वाक् इससे परे न कह पाये । यह 'परतम' है । इससे परे तो एकात वास और मौन है । प्रमाण—विरहिणी ।

प्रभो ! आपकी अटपटी वात मेरी समझ मे न आई—विस्तार से कहिए । गोपिका बोली—

बेटी ! सार है, प्रभु के स्वरूप का ज्ञान उस परम तत्व स्वरूप के अन्तरगत ही सब तत्व है । माया-जीव, क्षर अक्षर, पुरुष-प्रकृति । बस जहाँ उस परम भाव पुरुषोत्तम को जाना ' और सब जान लिया । कुछ शेष जानने को न रहा । लडाई तो उसके अन्तरगत भावों मे है । वह तो परतम् है । कृष्ण, कृष्ण है—दूसरा हो ही नहीं सकता । बहस व तर्क सब समाप्त हो जाता है । रह जाता है तो केवल मात्र मौन ।

सब ही कहते हैं, सर्व व्यापी हैं—सर्व समर्थ हैं—सर्व व्यापक हैं, सर्वज्ञ हैं—अन्तर्यामी हैं—पर विश्वास नहीं—यदि विश्वास हो जाय कि 'वह है' तो चोर चोरी न कर सके—कसाई हत्या न कर सके—कुछ भी न हो सके—रह जाये, तो केवल—सन्यास—फिर कर्म हो क्या हो सके—केवल भजन, भजन—निरन्तर ध्यान—एकान्त वास—हां दुनिया से सन्यास। और विरहिनी कर ही क्या रही है ?

बेटी ! महा दुर्लभ है यह श्रद्धा—जन्मा के सुकृत जागे—सत्तसङ्ग—सन्त कृपा प्राप्त हो—वैराग्य हो—अभ्यास हो, तब कहीं मन सधे। अश्रद्धा हो तो उस जल रूपी मन को हिलाती है। प्यार का प्रतिबिम्ब नहीं पडने देती। बेटी ! महा दुर्लभ है, यह श्रद्धा—सब साधन इसी को प्राप्त करने के लिए किये जाते हैं। सब का यही फल है-यह श्रद्धा 'भगवान है'

प्रह्लाद की यह श्रद्धा हुई थी—खम्भ से भगवान् प्रकट हुये। जड़ भरत को यह श्रद्धा थी, सिर काटने निमित्त आगे बढा दिया। अजगर मुनि की यह श्रद्धा थी, भिक्षा के अर्थ कहीं न गये।

'भगवान हैं'—यही परम सत्य है। त्रिकाल में सत्य है—श्रद्धा से ही यह अनुभव होता है। फिर वह श्रद्धालु भक्त कृष्णमय ससार देखता है। देखे भी क्या—जब सत्य केवल इतना ही है, 'तू ही है' ।

स्वामी जी उपदेश कर रहे थे कि गोपिका बोल उठी—प्रभो ! यह श्रद्धा कैसे प्राप्त हो ? कौन सी युक्ति से ?

नवधा भक्ति में से कोई एक साध ले। कीर्तन कर, कथा कर इत्यादि। ज्ञान में अधिकार है, तो ,तत्व विचार मन साधवासना क्षय कर। कर्म की अधिकारणी अपने को मानती है, तो भगवन् निमित्त निष्काम कर्म कर। फल तुझको बता दिया, वह है श्रद्धा उत्पन्न हो स्वभाव अनुसार साधन कर।

स्वामी जी ! मैं स्त्री हू मूड हू-मेरी परिस्थिति से आप परिचित हैं मेरे स्वभाव को जान परम सुलभ साधन बताइये। जो मुझे रुचे और मैं तत्पर हो उसे करन लगू। गोपिका ने प्रश्न किया।

बेटी ! जो कर रही है-करे जा - 'खोजे जा' उनके विरही की खोजे

जा-बेटी। खोजे जा—जब तक न मिले 'विरहनी को खोजे जा तेरा कल्याण हो—' कह स्वामी जी चले गये।

[८] परम श्रेष्ठ ही क्यो न हो—दुर्लभ ही क्यो न हो। जिनने पूर्व जन्मो के पुण्य से ही सुलभता से क्यो न वस्तु प्राप्त हुई हो—जीव को उसकी कदर नही मालूम होती—जब भटक-भटक थक जाता है, और वह हाथ आई चीज निकल जाती हैं। जब-जब उसका स्मरण आता है, वह हाथ मलता है—रोता है, जब-जब जहाँ-जहाँ उसकी प्रशंसा, दुर्लभता का हाल सुनता है, उसके प्रति प्रेम होता है श्रद्धा होती है—और प्रेम मार्ग मे श्रद्धा ही सार है। हरि, गुरु, सन, शास्त्री किसी में श्रद्धा कैसे भी हो जाये, कल्याण है। भगवान् की विचित्र लीला है कि असमथ पति, पुत्र, बन्धु, धन आदि नाशवान वस्तु मे तो आसानी से श्रद्धा हो जाती है—पर इन चारो मे महा कठिन है। श्रद्धा है, तुल-जाना ! धन, मन क्या जान से—सदा ही गुरु के चरणो पर न्योचावर होने को तैयार रहना। भक्ति का यही रहस्य है ! अनन्यता, पतिव्रत-धर्म—इससे सब प्राप्त है।

यह सब जान कर मैने 'विरहनी' को अपने हृदय मन्दिर म स्थान दिया था। गुरु मान पूजती थी। पर उसकी स्थिति मे न जान पाई। उसका प्यारा ही उसके प्यारे को पहचान सकता है। मैं न पहचान सकी। तभी तो साधारण व्यक्ति जान कैसे करता। भगवत् प्राप्ति का महान विरोधी है, 'गुरु में ईश्वर बुद्धि का अभाव।

हाय ! यह क्यो हुआ। मैने सन्तो की सेवा न की थी—गुरु पा मैं उन पर न्योछावर न हो सकी। ससारी सग ने मुझ लूट लिया। उससे मौन हो यदि मैं एकान्त वास कर सकती, तो आज रोना न पडता।

गुरुदेव मैं बलि जाऊ—मेरे हृदय मन्दिर की स्वामिनी क्या मुझ क्षमा न करोगी।

'क्षमा किया। है कौन—तो अब क्या आज्ञा ?

पुकारे जा, वही मेरी पुकार !

कौन सी ? वही 'विरहनी' की, वही गुरुदेव की पुकार—दर्शन दो श्याम-बस एक बार—बस एकबार—।

[६] 'गुरुदेव की खोज'—कितनी कठिन है—कोई मुझसे पूछे कितनी कठिन है ! जिसको अनुग्रह कर वह मिल चुके हैं, जानता है, 'गुरू की खोज कितनी कठिन है।'

अभागी मैं—जो उन्हें पा उनको खो बैठी—हाँ न पहचान पाई—मेरे गुरुदेव ! तुम्हें न पहचान पाई।

मैंने एक टेक बाँध रखी थी—जो मुझे दर्शन कराये वही मेरा गुरु है........।

पर कराये तो—मन दे यमुना तीर—हाँ कराये तो द्वारिका में—वह बालक जा रहा था, तुम्हारी कुटिया की ओर, दही लिये गईयों . . . . ।

(१०) 'श्रद्धा, महा दुर्लभ है। साधन से वह प्राप्त नहीं। किये जाओ साधन जन्मों तक, मिले न मिले।

सुलभ है, श्रद्धा प्राप्ति, महा सुलभ—यदि गुरु मिल जाये। गुरू की खोज महा कठिन है।

फिर उनकी पहचान कैसे हो—? जब कृपा कर वे ही दें—तो स्वामी जी। 'यह अटपटी पहेली कैसे सुलझाऊँ ?' बता तो चुका—केवल वही एक रास्ता है—उसके अतिरिक्त नहीं—पुकारे जा वही विरहिनी की पुकार—आतुर हो पुकार—रो रो पुकार—कपट, संशय, अश्रद्धा त्याग पुकार—पुकार, पुकार, वही पुकार—विरहिनी की पुकार—

दर्शन दो श्याम—बस एक बार—बस एक बार।'

२–हे श्री राधे–!

प्रिय बहन !

यदि वह आजाती—मेरी माँ श्री रा मैं मृतक जी उठती—भटकना खत्म हो जाता। यात्रा समाप्त हो जाती। परदेश मे बिछडी मैं अपने घर आ जाती। रोकर बुला चुकी—तडप कर बुला चुकी—निरंतर उनका ध्यान कर बुला चुकी निष्कपट हो पुकार चुकी वे न आई। माँ! तुम न आई—हे श्री राधे! वृन्दावन मे भटकाया—द्वारका मे भरमाया—अब क्या और परीक्षा बाकी है। मैं निर्बल हू—समर्थ हैं, तो मेरी गुरुदेव—पर वह नही मिलती—मेरे दुर्भाग्य मिल कर बिछुड गई—बिछुड गई—। 'खोजे जा—वह मिली और तेरी भी मिली।' मेरे मन वासी, तेरा आदेश सुन लिया। 'विरहिनी की खोज में चल दी—'।

[१] 'जो स्वय विरह मे व्याकुल हो खोजता फिरता हो, वह मुझे स्वामी से मिला सकता है'—मेरी बुद्धि मे न आता था फिर कैसे गुरू बनाती। पर गुरु तो मैंने अवश्य विरहिनी को बनाया था—मंत्र था, दर्शन स्वामी के वर बनाया था। पर गुरू ज्ञान, दर्शन बाद तो मोह न रहना था—सदा प्रभु के हाथ म हाथ रहना था—यह तो नही में तो वैसी ही अकेली, सिया की तालाश मे भटक रही हूँ।

तो क्या वह दर्शन न थे—फिर भी तो हुये—यदि पहले स्वप्न तथा ध्यान में दर्शन थे, तो यहाँ तो मैंने प्रत्यक्ष उनको गईयो के संग, गुरुदेव की कुटिया की ओर जाते देखा—फिर दर्शन से क्या तो कोई सुख नही—दर्शन परम लाभ स्वरूप है, पर मैं तो पहली सी ही दुखिया हूँ—वगालिनी अब भी वैसी हू।

'दर्शन, दर्शन मे भेद होता है। साक्षात्कार के अनेक भेद हैं। पूरे गुरु के उपदेश से, मन्त्र के लिये मोह नष्ट हो प्रभु के स्वरूप दासी के हृदय में विराजमान हो जाते हैं। वे प्रकाशमय दिव्य स्वरूप

फिर माया रूपी तिमिर नहीं आने देते। जीव मुक्त हो जाता है।' स्वामी जी ने गोपिका के पीछे आ उपदेश करना शुरु किया।

गुरु बिना पहचान नहीं होती—इस पहचान को ही ज्ञान कहते हैं—इसीसे मुक्ति है। अवतार काल में कितने दर्शन कर न पहचाने—द्वेष करते, विमुख रहते और फिर फिर मरते, जीते। कर्म की बेडी में बधते अन्त तक रहे।'

'वह तो राजकुमार थे'—तुलसीदास जी, हनुमानजी, से प्रभु के दर्शन होने पर बोले—कृपाकर श्री हनुमान जी ने बताया, यह चन्दन जो लगा रहे हैं, 'यही तेरे स्वामी हैं'—तुलसीदास जी दर्शन करते मूर्छित हो गये—दिव्य प्रकाश कैसे सह सकते। 'पहचान से ज्ञान हुआ—मोह नष्ट हुआ और अमर होगये'।

बिना गुरुज्ञान के कितने लोग देव देवों के दर्शन पा तथा चमत्कार सिद्धि देख रीझ जाते हैं—समझने लगते हैं, दर्शन हो गये—कभी ध्यान नहीं देते | दर्शन बाद मोह लेश मात्र नहीं रहता—वह भाग्यवान् भक्ति में सदा चूर रहता है। रोम रोम से, प्रकाशवान चेहरे से, उसके सब ही अंगों को देख पता लग जाता है कि यह साक्षात्कार कर चुका है।

इसलिये बेटी! खोजे जा—विरहिनी को खोजे जा ठीक है, 'जो मुक्ति दे सके वह ब्रह्मज्ञानी ही गुरु बनने व ज्ञान उपदेश करने का अधिकारी हैं'—हर एक समाधि लगाने, योग सिद्ध दिखलाने वाला चमत्कारी गुरु नहीं हो सकता—जो सदा आत्मा में सतुष्ट, स्थित है—वह ही ज्ञान दीपक बाल सकता है—सत्य गुरु है।

ज्ञान का पथ भक्ति से न्यारा है—भक्त गुरु की महा कठिन पहचान है—अन्त तक वह विरह में जलना देख कितनों को भ्रम होता है और पूछ बैठते हैं, 'स्वामी था, विरह क्यों? अभी स्वामी इष्ट नहीं मिला'—पर यह सदा ठीक नहीं—चैतन्य महाप्रभु, मीराबाई, तुकाराम के जीवन को देख लो—विरह को परम धाम जाते समय तक न त्यागा—पर सब ही मानते हैं, वह पूर्ण सतगुरु थे।

बेटी ! गुरु की महिमा तू नहीं जानती | भक्त वैष्णव गुरू तो सदा दास कहलाने मे सुख मानता है, लम्बी दण्डवत करने, उच्छिष्ट प्रसादी भक्तो की पाने व चरणामृत पान करने मे भक्ति का रहस्य है 'अनन्यता' और उसका साधन है 'दीनता'—अपने जीवन मे उसे वरत कर वह उपदेश करता है—'दीनता से ही अनन्यता आती हैं—उसी से कृष्णमय जगत दीखता है।' महा कठिन है, गुरु की पहचान ?

केवल एक मात्र रास्ता है—पुकारे जा—वे कभी तुझे फिर तेरी गुरुदेव से मिला देगे। हां केवल वे ही मिला सकते है—और की सामर्थ्य नही—सो पुकारे जा, वही पुकार—तेरी गुरू जो सदा पुकारती है—

दर्शन दो श्याम—बस एक बार —बस एक बार—

(२) जीव सदा ही स्वभाव अनुकूल वरतता है—उसके अनुसार उसका ध्येय बनाता है, साधन करता है, विघ्न हटा सफलता प्राप्त करता है।

'मानो नाश, वासना क्षय, तत्व ज्ञान'—यह है ज्ञान का पंथ—सदा विचार से नित्य, अनित्य अलग करते चलना। शरीर बुद्धि की जगह निरन्तर विचार से आत्म बुद्धि स्थापन करते चलना—'मै ब्रह्म हूँ—मेरे सिवा दूसरा ब्रह्म नही,—इस भाव को दृढ करते चलना—द्वन्द रूपी विघ्न—काम, क्रोध, मान, अपमान, शीत, उष्ण सब ही मे सम रहना—एक आत्मा मे स्थित हो, सब ओर रज, तम" तत्व गुणो का खेल देख—अलग रहना—कर्म मे न बधना—अनेक जन्म बाद सिद्धि प्राप्त करना—मुक्त हो विचरना—हाँ मै वह्म हू—सब वह्म ही है—फिर कैसा दीन होना क्यो सिर झुकाना—विशेषकर यह भाव मुक्त होने से पहले ही आ जाता है। और वह्म ज्ञानी को ऐसा गिराता है, कि योगीराज जन्मो तब नही उठ पाते। पर यदि अन्त तक दृढ रह सफलता प्राप्त कर, अपना लक्ष—आत्म-

स्थित-मुक्ति प्राप्ति करते हैं—वे गुरु हैं—ज्ञान दे मोह नष्ट कर—आत्म दर्शन करा मुक्त करते हैं। ऐसे समर्थ बहुत दुर्लभ है।

और दूसरी ओर है 'विरहिनी'—साक्षात् दीनता मूर्तिमान क्या पक्षी, क्या वृक्ष सब ही को तो पग-पग पर दण्डवत प्रणाम करती चलती है—न वह जानती मुक्ति क्या है, न उसको उसकी इच्छा है—न उसे ब्रह्म बनना है। केवल उसने इतना जान लिया—'ठाकुर नन्द किशोर हमारे ठकुरानी वृषभानु लली हैं'—उसने जान लिया, उसकी आत्मा का कोई भी स्वामी है—वह जान गई है—'दासोऽहं' सदा उसकी आत्मा पुकारती है—जीव ब्रह्म नहीं हो सकता—कृष्ण, कृष्ण ही हैं-भूल हैं, जो कहे 'मैं राधा हूँ-मैं कृष्ण हूं'-मेरे स्वामी-स्वामिनी! ऐसे अल्प बुद्धियों को तुम क्षमा करो। शरीरी तो केवल एक मेरा स्वामी है, सब आत्मा उनके शरीर है जैसे इस आत्मा के यह कारण, सूक्ष्म, स्थूल शरीर हैं। भक्त जानता है, आत्मा में मुक्ति है-पर उससे परे भी कुछ है—वह है मुक्ति दाता परमात्मा, उसे वह चाहता है—मुक्तिदाता ऐसे मुक्ति, भक्ति का तिरस्कार करने वाले भक्त को कर लगाता है—तभी तो मुक्ति उसके चरणों पर लोटती है और वह उसकी ओर देखता तक नहीं—चाहता फिर कैसे सम्भव है—जिस चीज की वह कद्र नहीं करता, क्या वह अपने आश्रित शरणागत को देगा—नहीं उससे उत्तम—उसको जो परम प्रिय वस्तु है वह देता है—भला क्या—प्यारे की पुकार—'श्याम! दरस दो बस एक बार बस एक बार!—

पुकार ही सार है—नाम नामी में भेद नहीं। नाम देना ही श्री राधा कृष्ण देना है—ज्योंही वह शरणागत करता है मंत्र अर्थात् नाम देना है—'और स्वामी सामने आ उपस्थित होते हैं। ऐसा होना है वैष्णव गुरू। ऐसी थी विरहनी।'

'अवश्य थी! ऐसी ही थी! मेरी गुरुदेव—' गोपिका ने जो की बात खत्म होते ही कहा—और लगी करन विलाप—'अब कैसे पाऊं—प्यारे गुरुदेव! कहां पाऊं—स्वामी जी! दया कर युक्ति बताओ।'

क्या भूल गई—फिर बताता हूं—सुन, पुकारे जा उसकी प्रिय पुकार—

'दर्शन दो श्याम बस एकबार—बस एकबार—'

[३] वैष्णव गुरू का प्रत्यक्ष चिन्ह है, 'भगवान पर तुल जाना'— मनसा, वाचा' कर्मणा, सर्व भावो से उनकी पूर्ण शरण जाना। पूर्ण निश्चय उसको होगया होता। अनेक जन्म तो माया को समर्पण किये- यह अब स्वामी का है—उसका शरीर हू' उसकी आत्मा निरतर पुकारने लगी थी। कैसी मूढता कि अब तक मै स्वतत्र मानता था, अपनी आत्मा को, और शरीर बुद्धि उस पर आरोपण कर अपनी हड्डी चूस अपना चैतन्य लुटा सुख मानता था—मै स्वामी की भोग्य वस्तु हू—मेरे सब कर्म सर्वदा उनके निमित्त, उनकी प्रसन्नता के लिए हैं—उनकी दासी हूँ, सो सेवा मेरा स्वभाव है—आज तक वह न करना ही महान चोरी थी—आज मुझे अपना स्वरूप मालूम हुआ—'दासोऽह'— । और निरनर निष्काम, अनन्य कृष्ण चितन मे लग जाती है। किसी का आश्रय किसी वस्तु के लिए नही खोजती—'बने तो राम से, बिगडे तो राम से'······ यह है तुल जाना।

हथेली पर जान रख प्रेम मे कूद जाना—निरतर ही कूदने पर तत्पर रहना—प्यारे के जिये मान, अपमान ताने, मार सब सहना पर माथे पर शिकन न लाना—यह है तुल जाना।

सब सुख पर लात मारना ·· बाल अवस्था मे सुन्दर उत्तम कुल की बालिका हो, भिकारिनी बन प्यारे की खोज मे निकल जाना-विरह को ही निरतर अपनाना लोक, लज्जा किसी की परवाह न करना एकात मे रहना, मौन रहना, एक झोपडी मे रहना, व्याकुल रहना, अधीर रहना, सदा ही इन्तजार मे रहना, जब भी स्वामी आ जायें— यह था 'विरहनी का जीवन'—ससार से विमुख निरतर प्यारे मे रहना, सदैव उसमे ध्यान मे रहना। ऐसी थी मेरी गुरूदेव! पर हाय मै उन्हे न पहचान सकी—करती क्या, प्रारब्ध मे यही था—अटल था—भटकना सदा था—वृन्दावन छोडना था—द्वारिका नगरी मे आना था—गुरूदेव की पहचान यहा पाना था—श्रद्धा का चरमा यहा मिलना था—ज्ञान

का अन्जन लगा गुरुदेव को यहां पहचानना था—इसलिए यहा आना था—उनकी नगरी में आना था—

[४] तो वह कब मिलेगी—मेरी गुरुदेव—स्वामी तुम न मिलोगे तो वह कैसे मिलेगी—प्यारे ! अपनी प्यारी का पता तुम्हारे सिवाय कौन बताएगा—क्या कहूं—स्वामी ! दया मय दया करो।

'पुकारे जा' वही पुकार जो तू जन्म के साथ लाई है—वही पुकार जिसको रोनी तुझे पा कोई दौड़ आती थी—कंठ लगाती थी—दूध पिलाती थी—हृदय से चिपटाती थी—हां पुकार वही पुकार, बालपने की पुकार—,मुझे याद है खूब याद है—मेरे हितैषी ! तूने ठीक स्मरण दिलाया—अवश्य पुकारूंगी, वही पुकार बार बार मां—मां—मां—
……आ……ओ……हे श्री रा……धे… !

———

३—बस इतना कह देना—'तेरी विरहिनी···'

प्रिय बहन !

मेरी कहानी—

मैं आ गई सुनाने अपनी कहानी—तुम थक गई—सो गई—कहानी लम्बी थी—लम्बी है क्या न सुनोगी—मेरी कहानी। अधियारे म आ गई—सुनाने—अपनी कहानी ! करती क्या, प्यारे बिना सदा ही तो मेरे जीवन मे अ धियारा है। लम्बी है ! हाँ—लम्बी है—मेरी कहानी—विरहिनी का जीवन जैसा लम्बा—वैसी ही हैं—यह उसकी लम्बी—कहानी। सुन सको—तो सुन लो—बस एक बार कहूगी—हा एक बार—अपनी कहानी ······। और फिर ··· पार ·· पहुच गई होगी ···· दीवानी ·खत्म हो गई होगी ··· उसकी लम्बी कहानी।

(१) तुम मिलते हो—जब मिलते हो, खूब मिलते हो—यही सुन के मै आई थी—सुनने आई थी—सुनाने आई थी—बहुत दूर से मै आई थी।

तुम मिलते हो—घन वन मोर से मिलते हो—चद्र वन चकोरी मे—जल वन मीन से—यह सुन मै आई थी—बहुत दूर से मैं आई थी–ओ सावरे रसिया ! तुमसे मिलने आई थी।

तुम मिलते हो—दुखिया को कण्ठ लगाते हो—आँसू पोछते हो—गोद मे बिठाते हो—प्यार करते हो—अबलाओ को—जिनका और सहारा नही, हाँ उनको प्यार करते हो—ऐसी सुन मै आई थी—सदा से प्यार की भूखी मैं आई थी—तुमसे मिलने आई थी—बहुत दूर से आई थी—ओ प्यारे ! तेरी खोज मे आई थी—बडी आशाये लेकर आई थी।

थकी, मांदी, भूखी, प्यासी—मैं आई थी—पहाडो मे भटकती

नदियाँ पार करती मैं आई थी—राता जगती आई थी—'श्याम आओ प्यारे। दर्शन दो-बस एक बार—बस एक बार—' पुकारती मैं आई थी। हाँ बहुत दूर से मैं आई थी—मन्दिर म पुजारी से पूछती आई थी—मस्जिद में मुल्ला को [तुमको पुकारता दख आई थी—बडी अभिलाषाय ले मैं आई थी—तुम से मिलने मैं आइ थी—बहुत दूर से मैं आई थी—ओ मेरे मन मन्दिर क वासी। फिर अपने मन मन्दिर के खाली सिंहासन पर तुम्हे बिठाने आई थी—मैं आई थी—तेरी द्वारका नगरी में आई थी—सब ही प्रेमियो का पूज्य श्रीधाम छोड कर मैं आई थी—सुनने हो—सुनाने आई थी—क्या न सुनोगे श्याम, मेरी करुण कहानी—बस एक बार—हाँ बस एक बार।

(२) जीवन, जीवन नही जिसम तेरी आग नही—हृदय, हृदय नही जिसम तेरा प्रम नही—कठ-कठ नही जिसमें तेरी पुकार नही—वही श्याम ! दर्शन दो—बस एक बार बस एक बार!

मार पर बना, वह आग्र आख नही—न हो लगी जिसम तेरे दीदार की इन्तजार—कान, कैसे कहूँ वह कान है जो सुनें कुछ और—हा केवल उसके सिवा कुछ और—वही विरहिनी की पुकार—श्याम! आओ—बस एक बार—बस एक बार।

(३) जीवन की तरगो में खेने लगी—बिन पतवार—और लगी ढूँढने हाँ—इन आशा से—उस पार मूक बन लगी पूछने—'बता दो। कोई मेरा साँवला यार।

(४) यमुना थी—मैं थी—गईया थी—गाती थी—पुकार रही थी—घटा थी—मोर थे—नाच रहे थे—चन्द्र था—चकोरा थी—मडरानी थी—सब ही तो सामिग्री थी—हा आह थी—तप थी—कमक था—आसू थे—आरती का समय था—शाम थी—पर हाय क्या करूँ लकर यह सब सामान—क्या करूँ यदि आन उपस्थित हुई शाम—बिन श्याम—हा—बिन श्याम।

पुजारी! यह कैसा भूत—क्या यह घडी व घडियाल—क्या नही जानता—मुँह क्या ताकता है—मूढ! बता—हा बता—यह क्या—

सब वयो हां बता किधर 'श्याम'—राधे जू के 'श्याम'—मेरे श्याम, प्यारे श्याम।

हे श्री राधे—

(५) नदी है—बहा करे—हमे क्या—प्रेम की बात किस को याद रहनी है—? फिर क्यो तू बहती है। बिन सुने बंसी ध्वनि—यह लहर लेना कैसा—बिन 'उनकी जल विहार लीला' यह तरंग कैसी—! मुझे नहीं सुहाती—रुक जा—श्री मैया। रुक जा, इस विरहिनी का, संग दे··· ।

कोयल! यह 'कूक' कैसी मै जान गई! पुकार रही है, वियोगिन तू मेरे प्यारे को—पुकारे जा—बलि-बलि जाऊं।

पपीहे! सुन्दर "पी-पी" की पुकार किये जा—तेरी मधुर वाणी में कैसी तडप, कैसा विरह इसमें—हाँ पुकारे जा बार बार—यह मुझे जीवन प्रदायिनी पुकार 'पी कहाँ—पी कहाँ—

(६) राधे बन आओ श्याम! मैं वारी।

श्याम, बन आओ? हे श्री राधे—मै आरती उतारूं। ब्रजाङ्गनाओ! आओ—हाँ इस समुद्र तट पर नहीं इस बन मे रास रचाओ—प्यारी—प्रियतम को रिझाओ। मै बलि जाऊं।

राधे को छोड—क्यो आने लगे श्याम—रस न भंग हो जायेगा—!

प्यारे को छोड—क्यो आने लगी मेरी मैया—उनसे कैसे वियोग सहा जायेगा। रस का सामान—प्रिया प्रियतम की सेवा—कैसे त्याग आओगी श्री गोपी जन!

न आओ—हाँ न आओ—जल जाने दो—इस अभागी विरहिनी को अपनी वियोग की अग्नि मे धधक धधक जल जाने दो—अकेली हाँ अकेली' ···

'पी—पी'—मै अकेली नहीं—तू भी है—पपीहे! ठीक ही है—जब मै जल बल राख हो जाऊं—मेरी भस्म मे आ लोटना—अपना विरह बुझाना—न बुझे तो उड कर जाना वहाँ—हाँ बडी दूर = उस पार—और कहना उनसे—'तेरी ' जब वे पूछें—यह

भस्म कैसा ! इस राख में इतना तेज क्यों—तब कहना—जब वे कहें तू मूक क्यों—तब कहना—रुकते-रुकते कहना—वह सह न सकेंगे—तब कहना—ओ मेरे वियोग के सगी ! जब वे बार बार पूछें—व्याकुल हो पूछें—अधीर हो पूछें—बस इतना कहना—'तेरी विरहिनी ·····'

(७) श्याम ! तुम न सह सके—यह मूर्च्छा कैसी—तुम्हें यह क्या हो गया—तुमसे न सुनी गई—हाँ अपनी विरहिनी की कहानी······ प्यारे ! क्या न जानते थे—वह विलम्ब न सह सकेगी देर न करनी थी—अब क्या होता है—क्या न जानते थे विरही का—हाँ तुम्हारे विरही का यही अन्त होना है।

प्रेमी की परीक्षा कब तक—तुमको सुनने का शौक था—इसी लिये उससे लम्बी कहानी कहलवाई थी। हाँ उसीको याद कर—रोओ · ···

नही नही प्यारे ! यह मैं क्या कह गई—तुम क्यों रोओ—तुम्हारी बला रोयें—रोयें हम जो तुम्हारे वियोग में जल रहे हैं। नही नही प्यारे ! यह मेरी मृत्यु मेरे शरीर की मृत्यु होगी—मेरी नही—मैं तो सदा ही तुम्हारा ध्यान ले जीऊगी—कर्म की चादर ओट जहाँ भी जा पड़ूँ—इन्द्रपुरी या यमपुरी—तुम्हारा ध्यान है—तो सब ही समान है।

प्यारे-तुम बिन जीवन नीरस है—तभी मृत्यु को अपनाया चाहती हूँ—पर नही आती—विरह तो योगाग्नि प्रकट कर भस्म हुआ चाहती है—शीतल आँसू वहा-यह नेत्र उसे शांत कर देते हैं—मेरे मित्र सगी बन मुझ से ही वैर करते हैं—नही नही—यह वैर नही—मुझे उपदेश करते हैं—कहते हैं 'प्यारे की मरजी के विरुद्ध यह कैसी अरजी !'—सहे जा—पर····"

(८) 'हम बेकार हैं या बाकार—कर्म है या सन्यास—यह हमारा जीवन—?' तुम्हारा प्रश्न—क्या जवाब दूँ—! उससे पूछो—उस कदम के नीचे, त्रिभंगी अदा में, अधर पर वंशी लगाये, खड़े हुए

[१०] शाम आगई—श्याम न आया—सङ्ग सखा आ गए—श्याम न आया—हाय ! सब कुछ आगया—श्याम न आया—तो क्या आया, जो श्याम न आया—कुछ न आया—हाय प्यारा न आया—हाय श्याम न आया—मेरे चकोर नयना का चन्द्र न आया—सब कुछ फिर आया भी तो क्या आया—।

तो क्या न आओगे श्याम ! विलम्ब कर आओगे तो क्या पाओगे-हमारे फिर किस काम आओगे—तजे जब प्राण—तो क्या पाओगे—हा पाओगे—अवश्य पाओगे—पहाडा, वृक्षा से टकराती हुई आती हमारी व्यथित आत्मा की पुकार—क्या न आओगे श्याम !

बस एक बार—हा एक बार ।

——— — —

४—वही मरने की बात——······

प्रिय बहिन !

अभी सवेरा भी न हुआ था—और आ जगाया कहानी सुना ! मैं बेकार इसलिए देर तक सोती-रोजगार ढूंढ़ा, न मिला—मेरे मन का न मिला—कहती थी, 'रोना दो'–मिल जाये–यह कर्म—तो मैं कौशलता दिखाऊ —कर्मयोगी कहलाऊँ— !

हाँ दिन रात रोऊ —कहानी सुना सुना रोऊ —पर यह 'रोना' प्रियतम ! तेरी याद म रोना—व्याकुल हो रोना—दर्शन के लिए रोना—अधीर हो रोना—! कब मिलेगा—यदि तुम प्रार्थना करो —'मेरी तरह इसको भी रोना दे'—

[1] न आना है—न आओ—जाना है—चले जाओ—'ताके तरशक से दामन को बचाते चले जाओ'—मैले हो जाओगे मेरी परछाई पढने से—चन्द्रमा की ज्योति मे स्नान करने वाले, पीतम्बर का छोर न छू जाये—जाओ उसे बचा कर चलने वाले, जाओ—जहाँ जाना चाहो जाओ—ब्रज मे जाना हो जाओ—इन्द्र, ब्रह्मा का मान हरने जाना हो जाओ—अर्जुन को राज्य देना हो, जाओ–कुरुक्षेत्र मे जाना हो, जाओ—राज्य सुख भोगना हो जाओ अवश्य मथुरा मे जाओ—! ·

पर यह क्या—जाते समय यह मुह फेर कर देखना कैसा—लेते जाओ, हा सब अपनी स्मृति लेते जाओ—इन पद चिन्हो को मिटाते जाओ—हा मेरे हृदय पटल पर विरह से अकित 'अपने नाम की रेखा' मिटाते जाओ—बिना कुछ निशान छोडे जाओ—कुछ भी मै ले न जी सकूँ—सब ही दान दी सामग्री समेट लते जाओ—अवश्य जाओ—दूर—जाओ—बहुत दूर जाओ—सब प्रेम की जजीरो को तोडे जाओ—इन कानो ने तुम्हारी नूपुर ध्वनि सुनी है—द्वारिकाधीश !

इन्हें दण्ड देते जाओ—यह आखें तुम्हारे इन्तजार में बही हैं—इन्हें फोड़ते जाओ—यह पलकें तुम्हारी प्रतीक्षा मे भपकी नहीं हैं—इन्हें नोचते जाओ—यह प्राण तुम्हारे वियोग मे फड़फड़ाये हैं—इन्हें कुचलते जाओ—यह जिह्वा पुकारी है, 'हे कृष्ण ···· इसे काटे···
जाओ—इस अभागिनी विरहिनी को भटकते ···· ·· ·· ···
छोड़े जाओ · ।

[२] निडर जाओ—निर्भय जाओ—ईश्वर के ! ईश्वर ! तुम्हें दण्ड ही कौन दे सकता है—जो चाहो करो—पामाल करते जाओ—बरबाद करते जाओ—इस बस्ती को वन बनाते जाओ—इस घर को उजाड़े जाओ—हा जाओ—उस पार जाओ—बहुत दूर जाओ—तुम जाओ—मैं भी देखू तुम कैसे जाते हो—उस पार—हा एक बार—बस एक बार—

[३] तुम से बिछुड के मैं भी चला हूँ। 'योग' की यात्रा समाप्त कर 'वियोग' की 'यात्रा' प्रारम्भ करके चली हूँ—कौन बताये कहा ? केवल इतना ही जानती हूँ—मैं चली हूँ।

एक दिन मेरा लक्ष्य था 'प्यार का दर्शन'। एक सङ्गी था, 'उनकी चाह'। एक पथ प्रदर्शक था, 'उनका विरह'। बड़ा सामान साथ था—उनकी याद थी, तड़प थी' कसक थी—वन से बस्ती की की ओर तब मै चली थी—बड़ी आशायें ले मैं चली थी—तब भी मैं चली थी'

वैसे ही मैं आज भी चली—केवल मात्र मद रख चली—बिना लक्ष्य चली—बिना सगी चली—बिना पथ प्रदर्शक चली—सब ही सामान पटक कर चली—हलकी हाकर चली—पहाड़ों से सिर टकराती चली—काटो को लहुआ का खून पिलाती चली—बस्ती उजाड़ती मैं चली—हाँ भटकती चली—यहा चली—जिधर चली—क्या जानूँ कहा चली—सून मन्दिर मैं सूना सिंहासन छोड़ मैं चली—करती भी क्या—रहती कैसे—प्रवाह मैं चली—बरबाद मैं चली—सब ही त्याग मैं चली—पर इसको मैं कैसे छोडूँ—अब बचन इस प्रकार ले दर्शी

मैं चली—सब ओर से स्वतन्त्र अपने को समभी थी, पर इसकी कैदी बन में चली—उस पार में चली—मे क्या जानू, क्यो चली, कहा चली—सब ही छोड मैं चली—पर क्या करू—यह तो चिपट ही रही है—सङ्ग नही छोडती—मैं चली अकेली चली—पर पुकारती चली—करती भी क्या—परवश हो पुकारती चली वही विरहिनी की पुकार—

'श्याम दर्शन दो—बस एक बार—हा एक बार'— ।

[४] तुम क्यो उदास हो गये—तुम को छोड जा ही कहा सकती हूँ—ओ मेरे हृदय वासी ! जा ही कैसे सकती हूँ—क्या प्रत्यक्ष प्रमाण नही देखते तुम्हारे ध्यान को ले जाती हूँ—तुम्हारे विरह को अपना जीती हू—सदा ही जीती हू—मै विचित्र वियोगिनी, तुमको न पा जीती हू—और भी तो कारण है, जिस से जीती हूँ—तुम पूछते क्या ?—मौत नही आती, जीती हूँ—उसका द्वार खटखटा फिर आती हूँ—वह नही आती, सो जीती हू—मर नही सकती, सो जीती हू—हाय ! तुम पर मर नही सकती ।

वे कैसे भाग्यवान् है । जो तुम पर मरते हैं—जीवन न्योछावर करते हैं—और एक हम नही मरती है—नही नही इन मरने वाला के भावो पर मरती हैं—तभी तो हम रसिका कहलाती हैं—हम ऐसे कितने रसिक वृन्दावन मे हैं—जो वात २ मरते है— हर हो तुम्हारी अदा पर मरत है—तुम्हारी अलकवली पर मरते हैं—तुम्हारी टेढी भृकुटि पर मरते है—मधुर मुस्कान पर मरते हैं—हम इन मरने वालो की हर अदा पर मरते है—कैसे भोले यह रसिक है ।

तुम्हारी त्रिभगी अदा पर मरत है—वाँकी चाल पर मरते है—निदान कहा तक गिनाऊ—अदा अदा पर मरते हैं—और एक हम इन मरने वालो पर मरती है— बडे रसिक है वृन्दावन वाले ।

तुम्हारी काली कमरिया पर मरते है—टेढी लकुटिया पर मरते हैं—वाँस की वसुरिया पर मरते है—और कहूँ—वात बढती जारही है, पर कहे बिना रहा भी नही जाता—इशारा पा ही कहती हू—

तुम्हारी जनुदा ठुकरिया पर मरते हैं—और क्या ? रसिक, वे रसिक क्या, पनु, वृक्ष, लता सब ही मरते हैं—हा किस पर?—उस पर जिसपर श्याम ? तुम जीवन न्योछावर करते हो—यह सब, हम सब ही मरते हैं—राधे पियरिया — पर मरते हैं :

[५] मरने की बात रसिक गिरमौर तुम्हें न सुहाई। जीवन की बात कहा से लाऊँ—फिर दोनों में अन्तर हो तो कहू। तुम्हारा सा रसिक मिला सो दिल खोल डाला—नहीं, और होता, तो सत्य न छिपा केवल इतना ही कह देती—'ओ मरने वालो। हम तुम्हारे मरने पर मरते हैं।'

मौत के आगे क्या ? जीवन। जीवन के आगे क्या ? मौत। यह तो हुआ ससारी मौत का नियम—काल चक्र मरना व जीना—इससे लाग अवश्य डरते हैं—जीना चाहते है, पर मरते हैं।

पर प्यारे तेरी हर एक अदा से मारे—मरते लोग कहते, पर जीते हैं। सदा जीते हैं। जीते, जीते हैं—मरत जीते हैं—और हो क्यों न ऐसा—अमर जीवन तू—फिर क्या आश्चर्य जो तुझ पर मरत जीते हैं—सर्व समर्थ तू—फिर क्या आश्चर्य जो कि तुझ पर तेरे चाहन वाले मरत हैं—माधुर्य हा अनुपम माधुर्य तू—फिर क्या आश्चर्य जो तेरे प्यारे तुझ पर मरते हैं—ऐश्वर्य सम्पन्न, सर्वज्ञ, सर्वव्यापक अन्तरयामी—सब का स्वामी तू—वासुदेव—सब की कामना पूर्ण करन वाला तू—तभी तो लोग भिन्न २ भाव ले मरते हैं—हा तुझ पर मरते हैं।

कायर हैं तो एक हम—कि इन विरहिनी गुरुदेव को पा, बार बार बात २ पर मरते देखें—कहते हैं, हम मरते हैं, इन मरने वालो पर मरते हैं—पर कहाँ मरते हैं—ढोंग करते हैं—नहीं मरते हैं'—गोपिका कुछ ध्यान आते मौन हो गई।

[६] कहाँ हो मेरी गुरुदेव ! मुझ बिसरा कहाँ चली गई—मेरी गुरु—देव ! तुम बिन कैसे जीऊँ—प्यारी मिलो—मैं मरती हूँ—तुम पर मरती हूँ—तुम्हारी बात बात पर मरती हूँ - स्मरण आवे,

तुम्हारी याद पर मरती हूँ—क्या न वचाओगी ओ दया की सागर ! करुणा की भंडार ! मा क्या न वचाओगी—मैं मरती हू ।

प्यारा मुझको न मिला—प्यारे की प्यारी—विरहिनी मेरी गुरूदेव न मिली—इसलिये मैं मरती हूँ—अकेली, निराश मैं, अव न सहारा पा मरती हूँ—खोज निष्फल हुई—खोजती खोजती मै मरती हू—हा उसकी खोज खोज कर मै चल हारी मरती हूँ ... .

[७] मेरे स्वामी ! तुम्हे कोई न समझ पाया—न समझ पायेगा—भले ब्रह्म बन सतोष मान वैठे, पर अश न समझ पाया, अशी को—वह कैसे समझ पायेगा—तुमको क्या अनेक ब्रह्माण्ड केवल एक तुम्हारे अश के अतिरिक्त कुछ और हैं—फिर भी जीव ब्रह्म बने दीनता त्यागे, खुद पूजा त्याग, अपने को पुजवाये—कृष्ण वना फिरे—यह तीन हाथ का जीव एक ठोकर लगे, तो लुडकईया खा जाये—एक स्वास रुके तो पुरखे याद आजाय—एक वक्त मुफ्त का खाना 'नारायण—नारायण पुकार न पाये तो क्रोध से आग वबूला हो जाये—वेचारे दीन गृहस्थ को क्या क्या शाप न दे आये—मानो तमोगुण का अधिष्ठाता वन ताण्डव का भाव दिखाने की चेष्टा करता है—यदि वह जान पाता मेरे स्वामी, सब देवताओं को शक्ति प्रदान करने वाले तुम हो—अपनी माया की चाक पर चढा, कठपुतली वना नचाने वाले तुम हो—और जाने तो कैसे—'क्या उसके दिमाग मे घुस सकता है, कि एक ब्रह्मर्षि के चरण प्रहार खाकर कोई समर्थ चुप वैठ सकता है—जाने तो तब, जब तुम जनाओ—और तुम क्यो जनाने लगे, जब तक वह तुम्हारे भक्तों की चरण रज न सिर पर धारण करे। तुम्हारी विरहिनी की कृपा कटाक्ष के लिए वन वन न डोले'—'मेरे स्वामी ! दीन वनना, दीनता की महिमा दिखलाना, दीनता का उपदेश करना ही तुम्हे सुहाता है, भाता है ...'

मै जान गई, क्यो मेरी गुरूदेव मुझे नही मिलती—अभिमान का अकुर ले मै उनको खोजती हू । 'मै, मै' पुकारती तुझसे मिला चाहती हू—। कुफ्र केवल इतना ही है—यह 'मै'-'तू' के साथ जोडना—मसूर ने केवल 'हक' है—अर्थात्' मै सत्त हू'—परिणाम क्या हुआ—लोक मे

जो गति हुई प्रत्यक्ष है-सूली पर चढा--दो हाथ कफन न मिला—कब्र मिलने की बात तो दूर—और परलोक म वह 'सत्त-स्वरूप' बन किस लोक म विचरा, उसकी तो उसका 'सत्त-स्वरूप' जाने—ब्रह्म बनने वाला का लोक—परलोक मे क्या होना है ? चारा ओर तो बन रहे है—लोक मे उनकी गति प्रत्यक्ष है—आगे प्रभु 'कृपा कर'—यह भी तो तेरे ही दास हैं—भूल है।

[८] मेरे स्वामी तुम कैस करुणा के सागर हो—बालपने से ही मैं अनुभव कर रही हूँ तुम मेरे साथ हो—मेरी दुस्तर ससारी कामना क्या, दुर्लभ अस सारी वान्छा पूरी कर तुमने मुझ अपने हाथ मेरे सिर पर होने की अनेक बार सूचना दी—पर फिर भी जाने क्यो नही विश्वास आता—कि तुम इतने निकट हो।

पर आये तो कैस—कब से पुकार रही हू—'प्यारे श्याम ! दर्शन दो एक बार बस एक बार'—तुम कहत हो, 'दर्शन तो दिये, अनेक बार—बाहर भी दिये, और अन्तर बैठ कितनी बार न सदेहा को निवारण किया—'।

होगा—जैसे कहते हो, होगा—पर मेरा सन्देह तो अभी बना है—'केवल तुममे ही' एक अटूट श्रद्धा अभी न हुई—मोह न गया—तर्क करना न गया—अभिसूय्या न गई—तुम्हारे दशन बाद यह क्यो ?—

प्यारे ! मुझे इन दर्शनो से सतोष नही। यह भी कोई दशन हैं, स्वप्न से आए, स्वप्न मे आये यह भी कोई दशन है, ध्यान म परछाई से आय चले गए—यह भी कोई दर्शन है, कोई भेप धारण कर बिना पहचान दिये आये, चले गए। दर्शन दो श्याम ! एक बार—पर ऐसे कि फिर दर्शन का सवाल ही न रहे—वह दशन सार्थक है, जबकि पल भर भी तुम आँखो की ओट म न हो—सदा सङ्ग हो—अन्तर में बाहर म—स्वामी ! कुछ और न दीखे—दीखो तो केवल एक तुम—वृक्ष में, पशु म, आकाश में, पृथ्वी पर, सब दिशाओ मे तुम ही तुम दीखो—हाथ बढाओ प्यारे और ऐसा मेरा हाथ पकडो फिर न छूटे।

क्या पतित उद्धारक श्याम ! ऐसा मेरा उद्धार करना स्वीकार है, तो अवश्य करो-प्यारे मुझे दर्शन दो—बस एक बार बस एक बार—

वह क्षण ही मेरे जीवन की अवधि हो—न कम न ज्यादा—जब तक तुम हो—सामने व अन्तर मे सहारे हो, तब तक मैं हूँ—जब तुम छिपा चाहो तो यह जीवन न हो—यह नही कि तुम्हारा वियोग न सह न्योछावर हो—नही नही—कहन का आश्य तम्हारे मिलन पर प्राण पखेरू चरणो पर सदा के लिये उपहार हो—तो क्या स्वामी! तमने सुन ली मेरी अरजी—वही पुरानी पुकार—मेरे जीवन की पुकार—

स्वामी ! आ मिलो, बस एक बार'

५—'प्यारे ! तेरी याद आई'

प्रिय बहन !

विरहिनी का जीवन विचित्र है।

उसका स्मरण आया और सावर की याद आइ। उसकी आंख नहीं देखी और प्यार की चितवन याद आई। उसको ध्यानावस्थ खड़े देखा, और कदम्ब तल खड़ वशी धार की याद आइ क्या कहू, कैसी पहली है। वह कौन, हाँ प्यार की कौन है—कि जब भी विरहिनी, प्रत्यक्ष आई, स्मृति बन आई—जैसे भी आई—और उस रसिया की याद आइ—तुम ही देखो • ••

[१] अभी उनकी याद आई।

श्याम तेरी याद आई

शाम को आई—सवेरे को आई—रात को आई—दिन म आई—

कन्हैया तेरी याद आई।

पानी बरसत मे भीगते से बचान, कम्बली बन तेरी याद आई—तपते घाम म शीतल वायु बन तेरी याद आई—जाडे म ज्वाला की चिंगारी बन, मेरी ठड मिटान तेरी याद आई—

प्यारे ! तेरी याद आई।

पहाड़ों में भटकन, सुन्दर वृक्षो स फल बरसात, तेरी याद आई—काटो म नरमन, पुष्प बिछात तेरी याद आई—नदी में डूबती मेरी नय्या को, पतवार बन मनाती तेरी याद आई।

मोहन ! तेरी याद आइ।

इसी कारण मेरी मौत मर निकट न आई—जब आई, तो मेरी मौत ही मौत आई।

मनोहर ! तेरी याद आई।

जिस दिन मदा ने तेरी याद आई—मैं मदक— ! जब आद—तृष्णा बुझाता तेरी याद आद-जब आद जीवन प्रदान करती तेरी याद

आई-हा खूब आई, तेरी याद आई।

कृष्ण ! तेरी याद आई।

वन मे आई—वस्ती मे आई-वशी वट पर आई—यमुना तट पर आई—!

कैसी प्रतिपालव—सर्वत्र आई--निरतर आई तेरी याद आई···

[२] चलते चलते मुझे याद आई--रोते रोते मुझे याद आई-हसते हसते मुझे याद आई।

कभी रोमान बन आई-तो कभी शिथिल करती आई न जाना किधर से आई- न जान सकी कब आई--जाना, तो केवल इतना ही,

तेरी याद आई।

[३] कहने मे सुलभ—वरतने मे कितनी कठिन—हा अत तक यदि यह याद एक तुम्हारी' आती रहे-तुमने ही तो *उसकी महिमा गाई* है-"निरतर स्मरण कर, अत मति सो गति' - मेरी आखिरी पुकार होगी - 'दर्शन दो श्याम ' बस एक बार'-हा यदि कहता मेरा अतिम श्वास निकलेगा तब तो अवश्य तुम मुझे अपनी गोद मे सदा के लिए लोगे मेरी ससार की यात्रा समाप्त होगी। वैसा सुन्दर मेरा स्वप्न, मुझे स्वामी मिल जायेंगे।

पर प्यारे ! कैसे हो—जो तेरा स्मरण अन्तकाल मे हो—तुम्हारा सकेत मुझे पता चल गया अवश्य अत तक मै खोज जारी रखूंगी — अपने गुरुदेव, अपनी विरहिनी को खोजूंगी—उनका ध्यान न क्षण भर को बिसराऊगी— मेरे गुरुदेव और तुम्हारे ध्यान मे अतर नही—क्योकि मेरे गुरुदेव कैसे है—जैसा उनका नाम है, वैसा ही उनका यथार्थ स्वरूप है—कृष्ण विरह व कृष्ण एक है—दो नही, मेरी विरहिनी सदा ही तुम मे है—तुम उसमे हो—'वह है'—मै नही जानती—तुम ही हो—विरहिनी बन तुम ही स्वामी। अपनी खोज आप कर रहे हो—ऐसा न हो, तो मिलन ही न हो—विरह और मिलन एक ही के तो दो स्वरूप है। वास्तव मे एक ही है—विरहिनी व कृष्ण मे भेद नही। कृष्ण ही कृष्ण है—वह ही गुरु का रूप धारण कर भटकते,

खोज रत, मुझ स करा है—खुद दव हो, पुजारी बनत है—बनात है—यही नहीं—स्वय पूजा की सामिग्री बनत हैं—केवल कृष्ण हैं—और नहीं—फिर विरहिना कौन—मेरी गुरुदेव कौन ?

हाय ! अपने गुरु म ईश्वर बुद्धि न रख पाई- सो स्वामी आज तक तुमको नाती रही—नो पा सकी।

[४] 'श्रद्धा म व प्राप्त है'—बिना श्रद्धा सच्ची पुकार नहा निकलती—मेरी गुरुदेव ! तभी तुमने मुझे उपदेश किया था—पुकारे जा—अनन्य हो पुकारे जा—सवत्र पुकार जा—निरतर पुकारे जा—वही पुकार—'दर्शन दो श्याम बस एक बार—हा एक बार।

[५] सर्व व्यापक भगवान् हैं—सब जगह भगवान् हैं—यही दिखाने को वाराह वह बन चुके—मीन व बन चुके—इसी को बताने को खंभ, हा जड स प्रकट हो चुके।

श्रद्धा हो तो पत्थर से व प्रकट हो—वैष्णव अर्चा अवतार म पूर्ण विश्वास रख क्या नहीं करते—नामदेव न दूध पिलाया—मीरा न उनम लीन होने का सुख पाया—और गिरधर नागर न कितनी वार भक्तो को प्रत्यक्ष दर्शन दे श्रद्धा का प्रभाव न जनाया।

श्रद्धा है सार-जब भी हो जाये-पत्थर म हो- हो या व्यक्ति में शास्त्र म हो-गुरू म हो—सत म हो-किसी म हो-पर अनन्य हो—निष्काम हो और अत तक रह—इन सब का विरोधी है काम—वह असत्त भाव श्रद्धा इस सत्त भाव को सदा ही आच्छादित करने पर तत्पर रहता है—सब ही सग व आसक्ति से बच—श्रद्धा पैदा करे और कल्याण है।

श्रद्धा होते ही जब सब भाव स जीव शरण जाता है—अनन्य, निष्काम होता है—और फिर क्या असम्भव है-जब उससे वे मेरे स्वामी ही प्रकट हो जात है।

श्रद्धा ही सार है प्रेम से निरन्तर पुकारे जा। वह पुकार ही श्रद्धा पैदा कर देगी-स्वामी से मिला देगी जीवन यात्रा समाप्त हो जायेगी—परदेस छुट जायेगी। तू घर पहुँच जावगी।

इसलिये निरन्तर निभय हो एकात में सबके बीच मे सोते मे,

जागते मे, खाते मे पीते मे सर्वत्र पुकारे जा, वही विरहिनी माता की पुकार—

'श्याम दर्शन दो—बस एक बार—हा एक बार'— ।

[६] श्रद्धा ही से ध्यान होता है—ग्रौर ध्यान से ही ग्रन्त काल मे स्मरण होता है—मै जान चुकी हूँ—वृन्दावन मे यमुना तट पर एक बालक के जीवन मे देख चुकी हूँ—हा इस नुसखे को वरतते उसे देख चुकी हू—ग्रत तक कृष्ण नाम जपते देख चुकी हूं—ग्रनन्य होते देख चुकी हूँ-दृढ रहते देख चुकी हू —सुख सामिग्री क्या—भोजन त्याग केवल जल पर रहते देख चुकी हू —ग्रौर ग्रत मे ७० दिन उपवास करते, 'कृष्ण दर्शन दो'—पुकारते २ मरते—नही नही प्राकृतिक शरीर त्याग दिव्य स्वरुप प्रभु प्रकृति के स्वामी, मायापति के ध्यान में जाते देख चुकी हू —यह श्रद्धा, यह दृढता यह ग्रनन्य ध्यान ही निश्चय ग्रतकाल स्मरण की निश्चित युक्ति है—ग्रौर है—उनको जीव स्वभाव ग्रनुसार वरत सफलता प्राप्त करता है । बडा ग्रसर रखती है, ग्रंत की यह पुकार—'हे श्याम दर्शन दो—एक बार बस एक बार' ।

श्रद्धा कैसे हो? भगवान का ध्यान कैसे हो ? प्यारे की याद कैसे हो ? वैराग्य ग्राये तो तो हो—ग्रभ्यास करो, तो हो—इधर से टूटे, तो उधर जुडे+इधर ग्रासक्ति न रहे तो प्यारे मे ग्रासक्ति हो--गृहस्थी होने म डर नही--प्यारी को प्यारा वहां मिलता है—नही मिलता तो 'गृह-ग्रासक्ति' हो तो नही मिलता ।

मुझमे नही होती—प्यारे की याद नही होती—कब होती—होती तो दिन रात होती—कैसे कहूँ होती जब किसी समय होती—होती तो ग्रहिर्निश होती—सर्वत्र सब दशा मे होती—पतिव्रता की सी याद होती—'नागर का चित्त गागर मे'—होती तो ऐसी होती—फिर कैसे

+रब दा की पौणा--इत्थो पुटना उत्थे लौणा ।—ग्रर्थात् भगवान का मिलना--इधर तोड़ना उधर जोड़ना—।

गुरु बुल्लेशाह पास भूमि से एक जगह उखाड दूसरी मे लगाते बोले थे ।

कहूँ श्याम तुम्हारी याद करती हूँ—तुम्हारी याद करती तो और कुछ कैसे कर पाता—

होती तो जाहिर होती—सगियो के सग

होती—तडप होती -कसक होती—आह होती—आँसुग्रो की नदी होती–तभी तो कहती, कहाँ होती–प्यारे तुम्हारी याद मुझसे नही होती।

अगर होती तो केवल दिखावे की याद होती—यदि सोणी की मेवाल+के लिये जैसी याद थी, वैसी होती, प्यारे से मिलने जाती, मीठे चावल की हाडी ले जाती, जगल के रास्ते जाती, नमाज पढते मौलवी के ठोकर लग जाती—कुछ उसको खबर न होती—फकीर की नमाज छूट जाती—खुदा की याद चली जाती—पर वाह री सोणी! तू प्यारे के ध्यान म ऐसी मात कि किसी क ठोकर लगी, मुझे याद भी न आती—। याद होती तो सोणी की सी होती—जो परली पार प्यारे से मिलने, कच्चा घडा पकड पार होती—याद होती तो ऐसी होती।

कितनी सुलभ और महा दुर्लभ है, निरतर प्यारे की ऐसी याद! कहा होती? किसेहोती? होती तो कभी होती—किसी वडभागी को होती—कैसी

होती—न फिर उसे कुछ चाह होती—आस होती तो प्यारे की —निराशा होती तो प्यारे से न मिलने—कहना यही है, जो कुछ बनती बिगडती, होती न होती—तो प्यारे से।

प्यारे मे निरतर जीवन—यही उपाय, यही उपेय—यही साधक—यही साधन—यही साध्य—सब ओर वही—हा सवत्र वही—निरतर वही।

हो तो ऐसी—हा सदा ही ऐसी—तेरी याद।

[८] जो याद है, तो दिल शाद है।

+पजाब के

फिर कुछ न करना है, न धरना है—सदा ही प्रियतम साथ है—प्यारे ऐसी तेरी याद है।

महा तप, महा जप, यह तेरी याद है—जहाँ तू है, वहाँ तेरी याद है—जहाँ तेरी याद है, वहाँ तू है। इसीलिये लब वद हैं—खामोशी है— हाँ कभी भी नही फरयाद है—कैसी दुर्लभ ऐसी तेरी याद है। महान, अति महान, यह तेरी याद है ।

६—वस्तु न चाहिए वता दो वस्तु लेनेहार !

प्रिय बहन !

सकोच की चादर मैंने नोच डाली—और अपराध से न डरी।

निर्भय हो मैं पुकार बैठी—एकान्त में पुकार बैठी—ससार के सामने पुकार बैठी—भरदे मेरी झोली—दे डाल अपने आप को! निराश न कर—दर पं प्रेम भिखारिनी आई।

[1] देवाधिदेव ,सदा एक ही है—उन वासुदेव श्रीकृष्ण से परे तत्व नही—उसको ही सब ईश्वरों का ईश्वर जान।

भले भूल कर, पर भजते सब उसे ही हैं। क्या महादेव बाबा, क्या चतुर्मुख क्या इन्द्र, क्या वरुण!

स्वार्थ के लिये भजते हैं। कामना पूर्ति के लिये भजते हैं—डगमगाते सिहासन को स्थिर करने के लिये भजते है—दैत्य के डर से भयभीत हो 'त्राहिमाम्' पुकार, विष्णु भगवान की चौखट पर आ उन्हे भजते हैं—राक्षसों से हार मान, उन्हें परास्त करने को मेरे भगवान् को भजते हैं—यह सकामी देवता अपनी कामना पूर्ति को उन्हें भजते हैं।

और अल्प बुद्धि व उपासक, जो उन मेरे स्वामी स्वमिनी को छोड, कामना से प्रेरे इन सकामी देवताओ को भजते हैं।

बेटी! ऐसे कितने भक्त कहलाते हैं—योगी कहलाते है—मूढ पडित कहलाते—अविवेकी, अल्प बुद्धि, जो स्वामी को छोड, उन विष्णु के इस सेवको को भजते हैं।

कोई इस उपाधि से बच गया, और लगा केवल मेरे स्वामी को भजने, तो उस उदार को माया ने पहनाया आर्त, अर्थार्थी, जिज्ञासु का जामा—तभी कितने भक्त मेरे स्वामी को सकाम भाव से भजते—ऐसे भजने वाला में कोई विरला है जो प्यारे को प्यारे के सुख के लिए भजता है—ऐसे विरले भक्त का ही कन्हैया माखन चुराता है—

और व्रज वनिताओं से नाम धराता है—'माखन चोर मुरारी राधेश्याम'।

[२] तेरे दर्शन का सुख कोई जान पाता—तेरे स्पर्श का अनुभव उसको स्पर्श कर सकता—तो क्या वह मुक्ति मांगता—ठुकराता—उसे ठुकराता—निर्भय हो कहता—'वस्तु न चाहिये हमको—हां मुक्ति न चाहिये। चाहिये तो मुक्ति दाता—जगत का भर्ता—श्री कृष्ण, अबला अनन्य शरणागतो का आधार।'

ऐसो को ही वह अपने आप को देता है—सदा ही देता है—पता नही लगता है—जब ही आतुर हो भक्त पुकारता है, 'प्राणनाथ' वह आ उपस्थित होता है—पर दुर्भाग्य उसके कि भक्त उस समय नही जान पाता—कितने काल बीतने पर उसके आगमन का अनुभव करता है।

वे मिलते हैं—सदा मिलते है—क्षण क्षण मे मिलते है—जहाँ भी हो सच्ची पुकार, वही वह आन मिलते है—जैसे भक्त उनको भजते वैसे ही मिलते है। निष्काम, अनन्य भक्त की सर्वत्र निरतर वे मिलते हैं-अधियारे मे दीपक बन मिलते है व्रज मे व्रजचन्द्र बन मिलते है—द्वारका में द्वारकाधीश हो मिलते हैं—वे भाव से रीझने वाले—अर्जुन के सखा बन मिलते है—जसोदा मय्या से बालक बन मिलते हैं—और व्रजवनिताओ से तो कठ लगा मिलते हैं—जीवन को निछावर कर मिलते है—कांताओं से मिलते है—सखाओं स मिलते है—दासा से मिलते हैं।

ब्राह्मणो का चरणोदक लेते मिलते हैं—धमराज के यज्ञ मे उच्छिष्ट पत्तल उठाते मिलते है—छाती पर अपने भक्त का चरण प्रहार खा, उनका चरण सराहते मिलते हैं—हा अदा अदा से प्रभु अपने भक्ता से मिलते है।

मर्यादा पुरुषोत्तम अवतीर्ण हो—मर्यादा उल्लघन कर-जङ्गल मे शबरी के जूठे बेर खाते मिलते हैं—निकृष्ण पक्षी जटायु को गोद मे उठा पिता तुल्य श्राद्ध करते मिलते हैं–राजाओ को उनके चरण दबाते

महलों में मिलते हैं–किस ग्रान से, किस वान से मिलते हैं–मेरे स्वामी सदा ही मिलते हैं।

ग्रौर 'ग्राज 'विरहिनी' को इस वन में दूध पिलाते मिलते हैं—।'

'स्वामी जी ! क्या कहा ? फिर तो कहो—क्या मेरी गुरुदेव को मेरे स्वामी मिलते हैं ?' गोपिका स्वामी जी की बात काट पूछ बैठी।

हां मिलते हैं—नित्य ही इस बड़भागिनी को मिलते हैं—'विरहिनी की ग्रनन्य; निष्काम, एकान्त पुकार में यही महान शक्ति है—सो ही कहती जा—प्रेम से कहती जा—ग्रनन्य हो कहती जा—कहती जा—

'दर्शन दो श्याम—एक बार—बस एक बार'। ग्रौर विश्वास रख वे मिलते हैं—ग्रौर विरहिनी को तो नित्य ही मिलते हैं।

[३] मेरी गुरुदेव ! तुमको मेरे स्वामी सदा मिलते हैं। क्षमा करोगी मेरी विमुखता, मैं बलि जाऊं ! भूल सकोगी मेरा ग्रपराध, न पहचान सकी तुमको। न जान सकी मां ! तुमको वे मिलते हैं—नित्य ही मिलते हैं।

'प्यारे ! कितनी कठिन है, तेरी प्यारी की पहचान। यदि संत कृपा से प्राप्त हो जाये, तो दुस्तर माया सागर में भटकती मेरी नय्या पार हो जाये।

[४] 'मोहन बिन क्या जीना'—श्याम—ग्राम्रो श्याम—ग्राग्रो श्याम—मेरे जीवन श्याम—!

जित देखूं तित श्याम—इत श्याम–मेरे प्यारे श्याम—!

ग्रपनी विरहिनी को दरस दिखाग्रो श्याम ! चहूं ग्रोर श्याम—

इत श्याम-उत श्याम-मेरे श्याम-प्यारे श्याम—कैसे श्याम-सुन्दर श्याम।

कित श्याम ?

इत श्याम-उत श्याम ! श्याम !! श्याम !!!

कहा गये श्याम—प्राणाधार श्याम—मेरे श्याम—केवल मेरे श्याम !

ग्राग्रो श्याम—दर्शन दो श्याम—बस एक बार—बस एक.........
......(विरहिनी मूर्च्छित हो गिर पड़ी।)

[५] पहचान ली—मैने पहचान ली—यह पुकार—मेरे गुरुदेव ! तुम्हारी निरतर की पुकार—

"याम ! दर्शन दो श्याम—वस एक वार—वस एक" · ·'
रुको मै ग्राई।

[६] क्या स्वप्न था—नही तो विरहिनी कहा—पुकार तो सुनी हा इस वृक्ष तले से ग्राई-पर गुरुदेव मै सेवा मे ग्राती हूँ पर तुम्ह नही पाती हूँ—क्या पुकार वन, पुकारती फिरती हो ?

मेरी पहेली—कौन सुलझावे—तुम विन ! श्याम दर्शन दो—वस एक वार—हा एक वार !

[७] जीवन यात्रा कठिन होती है-होगी। पर विरहिनी का जीवन, तो जीवन को धारण करना कठिन हो गया—माया रचित इन्द्रिया कैसे सह सकती प्यारे के नाम की पुकार—तिमिर के यन्त्रो से क्या प्रकाश थामा जा सकता है।

सत का शरीर क्या सत को धारण कर सकता है—नही, कदापि नही—ग्रप्राकृतिक प्रभु के वियोग की ग्रग्नि, मामा की चादर कव तक सभाल सकती है। परोपकारी सत इसी कारण दिव्य शरीर धारण कर ग्राते है—कवीर, नानक, मीरा, चैतन्य महा प्रभु, तुकाराम ग्रत तक विरह मे जले—ग्रौर साथ ही ग्रपनी दिव्य चादर ल गये—कहाँ शरीर छोडा।

श्याम दर्शन दो—वस एक वार—वस एक वार।' मै क्या सोचती थी—मेरी गुरुदेव ! क्या तुम इस दुखिया, भोली, भूली गोपिका को जीवन प्रदान करने को, उपकार निमित्त परम पद का परम सुख त्याग इस वन म विचर रही हो।

तव तो मै ग्रवश्य तुमको पा लू गी—हा एक दिन अवश्य !

[८] निराश तो वह हा, जिसका मन विखरा हो—चारा ग्रोर लगन लगी हो—मै क्यो निराश हू—निराश तो वह हा जिसकी किसी ससारी वस्तु, व्यक्ति म ग्रासक्ति हो—मै क्या निराश हू। पर हा निराश हू—स्वामी ! ग्रवश्य निराश हूँ।

मेरी निराशा— ? तू नही मिलता—तू नही मिलता।

मेरी आशा— ? तू है—तू मिला है—बड़भागियों को मिला है—विरहिनी को मिला है।

तो क्या मुझको न मिलोगे स्वामी ! मारा था, तो पूरा काम तमाम करना था—यह तड़पा तड़पा—बिलखा बिलखा—भटका भटका, मारना कैसा !

यदि चाह सङ्ग लगाई थी—तो अब तक यह मुँह फेरना कैसा—कुछ और चाह होती—तो इधर मांगती—उधर मांगती—सब जगह मांगती— मैं भिखारिनी सब से मांगती।

पर "तुम" को किससे मांगू—यदि 'अपने आपको' दे सकते हो तो केवल तुम !

तो प्यारे ! विलम्ब क्यों—क्या भूल गये, वह तीन मुट्ठी तन्दुल की बात—तेरा हाथ न रोकते, तो क्या त्रैलोक्य न दे डालता—शंका करने वालों ने कहा, 'जो अब रावण शरण आगया, तो प्रभु, विभीषण को लंकेश बना चुके, उसे क्या दोगे ?'—क्या तुम न बोल उठे थे, "अयोध्या का राज्य।'

ऐसे दानी—ऐसे देने वाले—तो क्यों नहीं दे डालते इस आपके सामने आंचल पसारे बैठी भिखारिनी को !

क्यों नहीं दे डालते अपने आपको—हा बस एक बार—बस एक बार।

[६] कहानी सुनना तुम्हें भाता है—कहानी बनना नहीं। लीला करना तुमको सुहाता है—लीला बनना नहीं। ओ तमाशाई ! एक बार तमाशा बन भी सुख ले। और भी तो देखें—तू कैसे दे डालता है—हां अपने आप को—कैसे भर देता है झोली अपनी भिखारिनी की। तेरा यश त्रैलोक्य में सदा ही गान होगा—प्यारे ! आगे के लिये प्रमाण होगा—बड़ा नाम होगा—

बस दे डाल—अपने को—बस एक बार—हाँ एक बार।

७—न मे भक्तः प्रणश्यति—!

प्रिय बहन !

एक मात्र श्रीकृष्ण ही जिसका जीवन हो—वह लिखे तो क्या—कहे तो क्या—सुने तो क्या—सुनाये तो क्या—वही, जो उसे प्रिय है—सुहाती है—श्री राधा को प्रिय है—श्रीकृष्ण की बात—इसके अतिरिक्त मेरे पास है ही क्या— ? जो सुना, सुना दिया—जब तक अच्छा लगे सुने जाओ। यही याद रखना—बातो मे उलझ न जाना—वे मुरली मनोहर बडे रसिया हैं—जाने किधर से मधु वर्षा कर फसालें—और पर छुडाना मुश्किल हो जाये। कुछ ऐसी ही बात है—यह कृष्ण की बात—सुने से चढती है—कुछ ऐसी है कृष्ण की बात—तुम्हे अच्छी लगती है—सो सुनो—फिर प्यारे की प्यारी की कही बात—

कृष्ण की बात।

[१] तुम न आये—क्या हुआ जो तुम न आये······· ····न आये न······आ······ए ··

गोपियो ने पकड रखा होगा, न आये—सुदामा की सुदामापुरी बनानी होगी, न आये—द्रोपदी की विपद निवारण करनी होगी, न आये—गजेन्द्र को मोक्ष देना होगा, न आये—जटायु का श्राद्ध करना होगा, न आये।

भक्त वत्सल भगवान् ! नाम स भारना था, न आये न आये।

[२] आंधी—तुम न आये—तूफान आया—तुम न आये—वर्षा आई—तुम न आये—भवसागर मे अघो से भरपूर मेरी नय्या डगमगाई—तुम न आये।

पतित पावन भगवान् ! न आये, न आये।

[३] और आते भी क्यो—अवकाश मिलता तो आते। अपने नाम को सदा सँभारने वाले लोक उपहास का भय था—साधन सम्पन्न

भक्ता की पुकार न सुन, मुझ वलहीन पतित की सुनते तो क्या सबै कहत ।

न्यायकारी भगवान् ! न आये न आये ।

[४] रसिका का उत्सव—मधुर वाणी का गान—रस का प्रवाह—उस अमृत को छोड—इस रस हीन के पास कैसे आत—।

ओ रसिक शिरमौर ! न आये, न आये ।

[५] सुन्दर सिंहासन—सुन्दर भूषण—सुन्दर भोग—और सुन्दर आवाहन छोड, इस वन मे तिनको पर लटी—मट्टी के करवे मे जल के सिवा सग्रह न रखने वाली वियोगिन के पास तुम कैसे आते-विरहिनी के पास तुम न आये ।

ओ सुन्दर श्याम न आय, न आये ।

[६] मेरे पास देने को ही क्या था जो तम आत हाँ थी एक जान-सो उसकी तुमने कदर बता दी दिखा दी—मृत्यु ने ठुकरा, उसकी कदर बता दो यदि तुम न आत, तो मैं आती—पर फिर मैं कैसे आती—क्या उपहार ले आती—बिना उपहार कैसे पुजारिन कहलाती—बिना पुजारिन बने ठाकुर मैं कैसे तुम्हारे मन्दिर मे घुस पाती ।

तम कहत भिक्षा कर लाती क्या लाती-? और क्या लाती ? भिक्षा करने म जाती मर न जाती-तेरी दासी कहला, दूसरे देवता के सामने हाथ फैलाती—हाथ झुलस न जाता—तो तू बता क्या लाती-कहाँ स लाता । न लाती, तो सावधान हो तो आती ।

अवश्य ही मे सावधान होश स आती—यदि चित्तचार ! पहल स ही तूने बुद्धि न हर ली होती—तो जल्दी आती !

हा जल्दी आती—अवश्य आती—यदि माया के दलदल म आज तक मायापति ! तूने न फसाई होती ।

सङ्ग ल आती ।

हा वस ही आती—यदि तू ही उनका भर न देता—पगली है—ढेल मार भगा दो—पास न आने दो ! कह उन्हे विमुख न कर देता ।

तो मेरी पुकार ल आती ।

हा—स्वामी ! अब वैसे ही आई हूं—पुकारती आई हूं-भिखारिनी बन हाथ पसारती आई हूँ—विरह से व्याकुल मे, आचल पसारती आई हूं।

क्या न दे डालोगे—अपने को—हा एक बार—बस एक बार।

[७] यह है विरहिनी—कुल वाले इसका वैराग्य देख कहते थे, 'कुल कलकिनी'—लोक वाले ढेले मार कहते थे 'हट पगली' -इन्द्र इस बात पर अडा था, कि सदा ही वर्षा कर इसे तडपाऊगा—और वायु देवता इस बात पर तुले थे कि इसके वस्त्र के चिथडे २ उडायेंगे—लक्ष्मी तो पहले ही आचल की ओट कर अलग जा बैठी थी—रही पृथ्वी मय्या—उसने भी कांटे बिछा दिये थे।

सब देवी-देवता क्यो न क्रोधित होते—अपमान कैसे सहते—'हमारी शरण छोड, कृष्ण मे अनन्य भाव क्यों'—कम कस कर बदला लेन की सबने ठानी। टुकडे टुकडे को तरसायेंगे—रुलायेंगे—सतायेंगे—पर इसको चगुल से न निकलने—जाने देंगे।

[८] 'न मे भक्त प्रणश्यति'—

वह कहा करें

'ये भजन्ति तु मा भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम्'। वे भजा करें।

पर लोकपति तो हम हैं-चतुर्मुख भूल गये 'वत्स हरण' वाली बात, और प्रसन्न हो लगे दाढी हिलाने।

कर्म की चादर ले जन्मी—उसे कहा फेंकेगी—ऋण चुका कर ही जाना पडेगा।

[६] देवता, पितृ सम्बन्धि सब ही के ऋण से मेरा भक्त, मेरा अनन्य भजन करने से मुक्त हो जाता है। सावलिया सेठ ने मुनीम को इशारा किया, और उसने खोल दी ऋद्धि सिद्धि की थैलिया। फिर क्या था, देवता, देवी सभी तो लपक पडे—सूद दर सूद से अधिक पा, सब ही अपने लोका को कहते सहर्ष पधार गये।

'तेरे भक्त को मुक्त किया सब ऋण मे—सावलिया सेठ, हा सदा के लिए।'

मयादा पुरुषोत्तम सब कर सकते थे—पर मर्यादा सभारी—और अपने भक्त को कम के ऋण से पार लगाया।

पण्डित जी की कथा—अनन्य भक्ति की महिमा सुन सभी तो अनन्य भक्ता की खोज म निकल पडे—विरहिनी की खोज म—

द्वारका नगरी म हलचल मच गई—नई आई गोपिका ने भी वही सुन लिया।

तभी ता पता पा चल दी थी, वह गुरुदेव की खोज म—पुकारती वही गुरुदेव की पुकार—

श्याम दशन दो—एक बार—बस एक बार।'

[१०] 'कैसा जावन ?

'ऐसा जीवन विरहिनी का'—अनन्य कृष्ण भक्ता का एसा ही जीवन होता है—उसका केवल कृष्ण होता है—उपाय उपय अवलम्ब, साधन, ध्यय आश्रय होता है, तो कवल कृष्ण होता है।

ऐसी श्रद्धा, ऐसा अटूट नाता, अनेक जन्मो के निष्काम कमयोग, स्वधम पालन ज्ञान प्राप्त करने के पश्चात् इस जन्म मे होता है। यही पहचान है जो तन—मन—धन, मनसा—वाचा—कमणा से—सबन निरतर कृष्ण पर तुल गया'—उसका निश्चय यह आखिरी जीवन है। अबके जान के बाद उस आना नही है।

अब दिन टटोल देख लो कितने गहरे पानी म हो।

[११] सखी ! महा कठिन है श्याम सो प्रीति ! किये जा—बडे भाग्य से मिलती है—मिलने पर, महान् परीक्षा होती है।

परीक्षा म उत्तीण होने पर सावरे सुन्दर श्याम की अमर गोद मिलती है। कृष्ण का विरह मिल तो जान लो आगे चल कर कृष्ण प्रीति मिलेगी ! और इसी शरीर के रहते २ प्यार की गोद मिलती है। और शरीर त्यागने पर तो अवश्य सावरे की गोद मिलती है।

विश्वास करो—अवश्य कृष्ण-विरही को कृष्ण की गोद मिलती है—हो इसी जन्म म मिलती है। मकामता के जगल को फूक जाओ—विरही ! पुकार जा—वही विरहिनी की अमर पुकार-दशन दो श्याम—और विश्वास रख तुम्हे अवश्य श्रीकृष्ण की गोद मिलेगी।

८—न उस पार, न इस पार ?

प्रिय बहन !

लगन तो वही, जो लग जाय—और म त-तक न छूटे—वह भी कोई लगन है आज तो उफन पुथन नाला की नदी की तरह—और फल शात क्या, मोह ग्रस्त। तृष्ण प्रेमी को मोह स्पश करता ही नही—साक्षात्कार के पहले भी वह सकामता स भागता है। मोह स लगता है। वैराग्ययुक्त, त्यागमय जीवन बिताता है। पर यह लगन कैसे लगती है—सब ही तो कृपा के आधीन है —फिर भी—विरहिनी को लगी—यह जानकर जरा वही कहानी न सुन—उसस ही न पूछें—कैसे लगी—प्यारे की लगन—हा श्याम सु दर की लगन—'

[१] लगन तेरी लगती है-ज ब लगती है-खूब लगती है। किसको लगती है—कैस लगती है—क्या लगती है—कहा लगती है। बालक का लगती है—वृद्ध को लगती है—वन म लगती है—गृहस्थ को लगती है—पुरुष को लगती है—स्त्री का लगती है—भोगी का लगती है—रोगी का लगती है—दिन म लगती है—रात म लगती है—साधन के बल पर लगती है—बलहीन को लगती है—बुद्धिमान को लगती है—मूढ को लगती है—मनुष्य का लगती है—पशु को लगती है—

मुझको नियम कुछ नही मालूम कैसे लगती है—जानती हूँ तो केवल इतना कि तेरी लगन सवत्र लगती है—निरन्तर लगती है—सबको लगती है। यदि किसी को लग सके।

[२] लगी हो ता बताऊँ, कैसे लगती है। 'विरहिनी की दशा. और अनुमान की चौखट फाद प्रमाण के मन्दिर म जा पहुची—प्रत्यक्ष देख लिया, प्यारे! तेरी लगन लगती है।'

पूछने पर उत्तर मिला—मौन' हवा ने आश्वासन दिया, 'लगती है—' विश्वास हो गया—प्यारे की लगन लगती है।

कितना ही भवन सम्भाल कर बनाओ—देख रख रखा, लग सकती है, जितना में आग लगी है—कितने ही बिजली रोकने के यन्त्र लगाओ—बचाओ—पर बिजली उसका त्याग भवन के किसी और कोन में आ गिरती है। चौकीदार खड़े हों, ताले बन्द हों, फाटक मजबूत हों, फिर भी चोरी, चोर बन, धन से आ लगती है।

वैसे कोई तब कह, प्रभु की लगन कम लगती है—और पूछना भी व्यर्थ ही है—क्या इतना विरह का जीवन प्रदान करने का काफी आशा की रेखा नहीं कि जान लें लगन लगती है—अवश्य लगती है—कितना के लगी है।

फिर पुरानी बात। श्रद्धा हो तो लगती है—विश्वासी का संग हो तो लगती है—यदि विरहिनी का संग हो तो अवश्य लगती है।

विरहिनी का संग मिल जाये तो अवश्य प्रभु में लगन लगती है। सुन गोपिका का जी भर आया—। मैं निधन, धनी होने चली—' वह गोपिका विरहिनी की खोज में चल दी।

[२] लगन क्या है—विरह क्या है—चाह क्या है—यह सभी अनन्य भक्ति के अनेक नाम हैं, जिनके द्वारा कृष्ण प्रेम मिलता है।

पूर्व जन्मों के सुकृत एकत्रित किये हुये संस्कारों का बड़ी सुलभता से कृष्ण प्रेम मिलता है। अनेक जन्मों के कठोर साधन कर किसी किसी को इस अन्तिम जन्म में यह परम सिद्धि रूप प्रेम बड़ी सुलभता से मिलता है।

वैसे तो पूर्ण सन्त मिलना हरि कृपा व भाग्य जागने तथा समय आने के आधीन है—पर सन्त कृपा से जब भी मिलता है कृष्ण प्रेम बड़ी सुलभता से मिलता है।

वैसे तो मर जाइये साधन करते २—घिस डालिये अंगुलियाँ माला फेरते २—थक जाइये परिक्रमा लगाते २—कृश हो जाइये तप तप करते २—कृष्ण प्रेम नहीं मिलता—।

संग में ही रंग चढ़ता है—अनन्य भक्तों का संग महा दुर्लभ है—बेचारे गृहस्थ नाहक ही बदनाम हैं—गृहासक्त तो वह संग्रही वन में आश्रम बनाये वनवासी महात्मा हैं—कहीं कृष्ण प्रेम लंगोटी बाँध

अलख जगाते फिरने से मिलता है—मन मे चाह भरी पडी और ऊपर स्वाग बनाने से कृष्ण प्रेम नही मिलता है।

सच्चे वैराग्य से कृष्ण प्रेम मिलता है। फिर चाहे गृहस्थ मे रहो या वन मे। केवल कृष्ण मिलन की एक मात्र चाह ले रहने से कृष्ण मिलता है—तब भी जब वह कृपा करे तब ही मिलता है। कृपा का नियम नही—नियम है तो केवल यह—अनन्य भजन से कृष्ण कृपा करते है - मिलते है।

गुरु बनने से वह नही मिलते—शिष्य बनने से वह नही मिलते—मठ बनाने, महत बनने से वह नही मिलते—मान की इच्छा कर कीर्तन प्रचार करने को डोलने से वह नही मिलते—और मिले भी क्या—'मान मिले"—यह चाह कर पुण्य कर्म किये, सो मान मिल गया। आगे नल स्वर्ग मिल जायेगा—कृष्ण तो केवल अनन्य चाह ले, अन्त तक दृढ रह, सब ओर से कछुये की तरह वासना सकोड बैठने से मिलते हैं।

स्त्री का मुख न देखेंगे—कचन न छुयेंगे—पर जी चाहे वैसे ही उतम भोग करेंगे—खेल तमाशे मे मन लगायेंगे—जी भर अपने को पुजवायेंगे—ऐसे पाखण्ड से कृष्ण नही मिलता है।

सच्ची आह से कृष्ण मिलता है—तीव्र विरह की पुकार से कृष्ण मिलता है—त्याग से कृष्ण मिलता है।

व्रत, तप, जप, पाठ, पूजा इनमें से किसी से भी कृष्ण नही मिलता है—स्वर्ग मिले—देवता मिलें—मुक्ति भी मिल जाये—पर कृष्ण—कृष्ण तो केवल प्यार से मिलता है।

इसलिये कहती हूँ—प्यार किए जा—कृष्ण मिलना है-बच्चा बन जा, कृष्ण मिलता है—हा केवल मात्र कृष्ण को सर्वाधार रूपी माँ जानने से कृष्ण मिलता है—बालक की तरह कर्म के थपेडो से व्याकुल हो, केवल कृष्ण का ही आश्रय लेने से कृष्ण मिलता है—केवल शिशु की तरह एक कृष्ण के निरतर अनन्य ध्यान से कृष्ण मिलता है।

बच्चे की तरह सब ओर से निराशा हो, कृष्ण रूपी माँ की गोद मे ही सुख मानने से कृष्ण मिलता है—अबोध बालक सदश्य कृष्ण रूपी माँ को पुकारने से कृष्ण मिलता है। मिलने का परम रहस्य यही

है—'वह मिलता है'—सो पुकारे जा कृष्ण तू मिलता है—तो क्यों नहीं मिलता कृष्ण आ—कृष्ण आ—कृष्ण······आ·······!

[४] मेरे स्वामी ! वैसे तो कर्म में तुम्हारी बिलकुल स्पृहा नहीं है—तुम किसी से फल लेना नही चाहते—पर भक्तों के सब ही कर्म तुमको प्रिय हैं—सुहाते हैं—उनका भजन करना—पाठ करना—कीर्तन करना—ध्यान करना—परस्पर तुम्हारी कथा करना—तुमको इतना भाता है, कि तुम कृपा कर उन्हें दर्शन दे देते हो। उनका भोग तुमको इतना प्रिय है, कि उस भाव में विभोर विदुरानी सी भक्त के हाथ से केले के छिलके खा, उनको विदुर की गिरी से विशेष स्वादिष्ट बताते हो। सदना के बधने के जल के स्नान को, वेद पाठियों के गङ्गाजल के स्नान से विशेष सराहते हो। जहाँ राजाओं व विद्वानों के बहुमूल्य भोगों से नही रीझते, शबरी के झूठे बेर खा उनकी प्रशंसा श्री जनक जी के यहाँ भोगों से ज्यादा करते हो—भक्त का चढ़ाया फूल ऐसे आतुर हो प्रत्यक्ष हो लेते हो मानो नन्दन वन में भी वैसा न हो। सूँघना भूल से खा जाते हो।

बड़े रसिया हो श्याम !—भक्ति से किये ही कर्म तुम्हारी कृपा प्राप्त करने का एक मात्र साधन है। राजसी व तामसी कर्मों की तो बात ही क्या—यज्ञ, तप, दान आदि सात्विक भगवत सम्बन्धी कर्म तक तुमको तब ही सुहाते हैं, जब वह निष्काम भगवद्-बुद्धि अर्थात् अनन्य भाव से केवल तुम्हारी प्रसन्नता निमित्त किये जाते हैं—अन्यथा तुम ऐसे कर्मयोगियों को किनारा काट स्वर्ग दे डालते हो।

पर अपने अनन्य भक्त के चुंगल से तुम जाओ तो कहाँ—वह तो सदा ही तुम्हारी प्रसन्नता को सामने रख वैसे ही कर्म करता है। फल सब तुम्हें अर्पण करता चलता है। गोपी माखन क्यों तय्यार करती है—केवल इसीलिये कि श्याम सुन्दर उसे चुराने आवेंगे—इसी बहाने उनके दर्शन होंगे।

गोपी जन ने जना दिया—जो कर्म हो केवल एक बहाना हो कि श्याम सुन्दर दर्शन देने को खिंचे चले आवें।

तभी तो कहती थी, मेरी गुरुदेव—पुकारे जा, सदा वही पुकार —'श्याम ! दर्शन दो एक बार'—निरन्तर उनका ध्यान हो—उनका भजन हो—उनका कीर्तन हो—उनकी कथा का श्रवण हो। इसके अतिरिक्त और कोई भी अभिलाषा न हो—'कि श्याम सुन्दर दर्शन दें'—प्यारे ! यही तुम्हारा बताया—तुम्हारा प्रिय कर्मयोग है—इसे कर तुम्हारा भक्त तर जाता है—तुम्हारी सन्धि प्राप्त करता है।

सदा वही—एकान्त मे वही—खाते-पीते वही—सब समय वही—एक—विरहिनी की पुकार—'श्याम ! दर्शन दो—बस एक बार !'—!

तुम्हारा ऐसा निरन्तर ध्यान ही तुम्हारा अनन्य भजन है—यही तुम्हे भाता है—मेरे लिए यही स्वाभाविक है—मुझे प्यारे ! सुहावा है—सो करूंगी अब खोज—यही पुकार लेकर—'श्याम आओ—दर्शन दो—बस एक बार !

[५] कैसे बादल—कैसी घटा—क्या तुम आये श्याम ! अवश्य तुम आये—नही तो पंख फैला क्यो नाचने लगे। चारो ओर पक्षी क्यों 'जय जय' पुकारने लगे—लतायें क्यो झुकने लगी—बताओ ना ! क्यों मूक हो—बताओ, क्या तुम आगए श्याम !

श्याम ! घटा बन के आये मेरे श्याम !

यदि मै मोर बन सकती तो नाच नाच तुम्हे रिझाती। यदि मैं चातक होती—स्वाति बूंद के लिये मुख फैलाती !

क्या तुम रीझते—क्या तुम मुस्करा अमृत बरसाते श्याम !

कैसी सुन्दर घटा बन आये मेरे श्याम !

जित देखूं तित श्याम—विचित्र रंगो के पीताम्बर फैलाते श्याम ! अवश्य तुम ही हो—मैं पहचान गई श्याम !

न बताऊंगी—कैसे पहचान गई—पर पहचान गई। इसमे सदेह नही—मैने देख ली—!

विद्युत बन छिपी—तुम्हारे बीच मय्या राधे। अब कहाँ जाओगे—मैं जान गई—घटा बन आये मेरे श्याम !

[६] श्याम ! तुम न थे—घटा थी—श्री राधे ! तुम न थी—विद्युत

थी। बड़े अरमान ले देखी थी—घटा देखी थी—विद्युत देखी थी। निराश हो मैं आन बैठी थी—न जाने अब क्या सोच यहाँ आ बैठी थी—अपने जीवन की नैय्या डगमगाती देख, कुछ विचारती यहाँ आ बैठी थी—कोई आश्रय न पा आ बैठी थी—सहारा न देख आ बैठी थी।

मुझे पता नहीं क्या आशा ले आ बैठी थी—नहीं जानती क्या तुम्हारी चौखट छेंक आ बैठी थी—विश्वास रखो, जान कर कष्ट देने नहीं आ बैठी थी—अनजाने अपराध हुआ—क्षमा करना—मैं आ बैठी थी।

उस पार तुम—इस पार मैं—कितना अंतर—आकाश से परे तुम—पाताल की अधिकारिणी मैं—फिर भी साहस कर आ बैठी थी—कभी तो दर्शन दोगे महाराज! कभी तो रीझोगी महारानी! मेरी आत्मा पुकारती पुकारती यहाँ आ बैठी थी—थकी थी—मादी थी—और यात्रा लम्बी थी—साँस लेने को आ बैठी थी—चारों ओर सुन्दर दृश्य, मनोहर पुष्प यहाँ प्यारे अवश्य आये होंगे—कुछ विचार आ बैठी थी।

मैं अनाधिकारिणी—निराशा की घेरी-दुखिया, अबला, पतिता—बिना पूछे तुम्हारे दर पर भिखारिनी हो आ बैठी थी—दुःसाहस माना उठा दो—दया आय प्यार करो—मंदिर जान दर्शन को आ बैठी थी—बस—दर्शन दो श्याम! बस एक बार—अपनी पुरानी पुकार संग ले—तुम्हारी विरहिनी बड़ी दूर से चल, तुम्हारे दरवाजे पर आ बैठी थी।

[७] स्वामी! न मिलो—कुछ जोर नहीं—न मिली गुरुदेव न पाया सहारा, दुःख नहीं—मेरे दर्द भरे जीवन सागर में गिर पड़ी इन आँखों से वह, एक रक्त की बूँद, कुछ परवाह नहीं।

मालूम था-कठिन है सखि! 'श्याम सों प्रीति'-पर न करती तो करती क्या? जन्मांतर से जो दर्द अपनाती आई, उसे छोड़ कर जाते तो कहाँ? यह सिसकना, यह रोना, यह विरह मेरा जीवन—इसे बिसरा जाऊँ तो कहाँ? कृतघ्न न कहलाऊँगी इस पार रहूँ या उस पार जाऊँ, पर कृतघ्न न कहलाऊँ—यह सोच साथ ही इन्हें भी बाँध

लाई थी। और तुम्हारे दर पर आ आहो की अग्नि सुलगा आँसुओं की आहुति दे धूनी रमाई थी।

विचित्र मेरा यज्ञ—और तुम्हारे मन्दिर के निकट—तो क्या न आओगे तुम ?—

देख न जाओ—यह तमाशा—कैसा यज्ञ करती है, यह तुम्हारी विरहिनी—लीला तुम्ह भाती है, सो ही कर रही हू।

श्याम ! आओ—देख जाओ बस एक बार - ! न जचे, हर्ज नही—कोई जोर नही—जैसी मर्जी—प्रसन्नता पूर्वक फिर चले जाना—हाँ उस पार।

मैं भी प्राण पखेरू दे सकूँगी—तुम्हारे चरणा पर बना कर—'सुन्दर उपहार' !

कैसी अभिलाषा-जो तुम आ जाते एक बार। और न पूर्ण होती क्या परवाह—विरहिनी की यह आशा तो अवश्य ही पूरी होती— वह चढा सकती तुम्हारे चरणो पर जीवन का उपहार— !

[८] सतो ने सत्य कहा है, सिर साटे हरि मिल तो भी सस्ता जान'— !

देख लिया— यत्न से तुम नही मिलते—साधन से नही मिलते—!

पर मिलते हो—इसमे सदेह नही—एक ही जीवन मे मिलते हो, यदि कुछ पुकार सके—विरहिनी की सी पुकार—बस एक बार—

श्याम ! दर्शन दो—बस एक बार !

फिर, श्रीधाम—!

तृतीय खण्ड

फिर, श्री धाम—!

प्रिय बहन !

'विरहिनी—गोपिका'—की कहानी समाप्त हो गई । क्या थी—क्यों कही थी—समझ मे न आई । लेखनी मु ह ताकती शात हो गई—कान श्रवण का रस लेते लेते अतृप्त रह गये । रही मैं—सो अपने उलझे जीवन की पहेली कुछ सकेत पा सुलझाती रह गई । सकेत क्या था ? 'भटक मत—भटक कर व्रज मे ही आना है—गुरुदेव यहीं मिलते हैं—और हम—"हैं"—'मिलते हैं'—'मिले हैं'— । अनन्य श्रद्धा युक्त खोज से—खोजे जा और पुकारे जा—वही विरहिनी की पुकार—'दर्शन दो श्याम—मेरे श्याम—हाँ एक बार' । और विश्वास रख जब हम व गुरुदेव भिखारिनी तुझे मिल तेरी झोली भर देंगे—तेरा जीवन सफल हो जायेगा—कल्याण का दीपक बल उठेगा—तेरी यात्रा समाप्त होगी—उस समय की प्रतीक्षा मे निराशा त्याग तू बैठ—तेरा कल्याण हो—बोल जय श्री राधा कृष्ण ।

[१] प्यारी जू ! मैं फिर आ गई—तुम्हारे धाम—श्रीधाम—श्रीधाम आगई मैं भ्रमण करके— ।

प्रारब्ध से ही जीव भटकता है—दु ख, सुख भोगता—परवश हो सहता जहाँ तहाँ—प्रारब्ध कटा और फिर वह वहाँ का वहाँ ।

यह है सब का जीवन—महात्मा हो या दुरात्मा—सबको भोग भोगना ही पडता है । शुभाशुभ कर्मो का फल ।

जीवन बडी लम्बी यात्रा है—एक गोल चक्र है—योनियां की कडियो की बनी जजीर हैं—बडी दुस्तर है—कोई इसका पार न पा सका—बचा तो एक शरणागत ।

सुनो ना ! कल की बात—स्वामी जी चक्की चलती देख रो दिये —बडा आश्वासन दिया तब भी हिचकी बधी ही रही -मै पूछ बैठी, क्यो ? क्या हुआ ?' बोले, जीव की दशा पर रो दिया ।

'बचा तो वही दाना-केवल वही, जो कील की शरण गया—नहीं, तो वही घड घड की आवाज चारा ओर—काल की चक्की की आवाज —जीवा की पुकार, हाय !

स्वामी जी रोते रोते एक तरफ चल दिये—मैंने भी राह ली।

[२] बचा तो केवल वह—जो शरण गया।

ओ मुक्त के सागर ! करुण के भंडार ! ! फिर भी जीव तुमसे क्या आंख चुराता—सामने नहीं आता—भजन नहीं करता—भाग, गृह आसक्त रहता। यदि विश्वास करता, तो बेडा पार था—हा यदि पुकार सकता, दीन हो, आतुर हो, अनन्य हो, निष्काम हो—वह विरहिनी का पुकार-केवल एक बार—'स्वामी ! दर्शन दो—बस एक बार !

[३] सता का जीवन है तो पुकार—विरही भक्ता का जीवन है, तो केवल यही पुकार—ब्रज के पशु—पक्षी जीव मात्र क्या, जड वर्ग का जीवन है तो केवल यही पुकार—

श्याम ! दर्शन दो—बस एक बार।

सदा से पुकार रहे हैं—पुकारते हैं—पुकारेंगे—यही—केवल यही पुकार है—श्याम ! दर्शन दो—बस एक बार !

यह ब्रजवासी—सन्त हो या गृहस्थ—स्त्री हो या पुरुष-बालक हो या वृद्ध—और साधन न जानते न जानना चाहते। न करते न करना चाहते—जानते तो केवल इतना-हाँ यही पुकारना—

श्याम ! दर्शन—बस एक बार !

क्या गैया चराते ग्वाल बाल—क्या बच्चे खिलातीं, माखन निकालती, दही बिलोती, झाड़ू देती-जो भी गृह काज करती—पर सदा गोपी यही पुकारती—न और साधन जानना चाहती न जानती—केवल यही पुकारती—

श्याम ! दर्शन दो—बस एक बार !

हँसती, रोती, शांत हो बैठती, जो भी करती होती—सुबह होती या शाम होती—सर्वत्र निरंतर यही उनके अधरो पर एक मात्र यही पुकार होती—

श्याम ! दर्शन दो—एक वार !

व्रज मे ही इसका पाठ सुलभ है—तभी तो फिर भटक भटका कर यहाँ आ पडी हूँ—पहिले भी यही थी—हाँ विरहिनी के सग थी—कौन हम थी—कहाँ हम थी—कव थी—याद नही—याद है, तो केवल इतना ही—पहले भी हम व्रज मे थी—!

इस जन्म मे भी व्रज मे मिली थी—श्याम को यहाँ खोज खोज हार, उसकी खोज में वाहर गई थी—कहाँ कहाँ न गई थी—द्वारिका गई थी—प्रारब्ध काटने वहा गई थी—'व्रज मे श्रद्धा दृढ' करने वाहर गई थी—सस्ता मिल गया था व्रजवास—कदर न जान वाहर गई थी—भाग जागे-श्यामा जू कृपा भई-श्याम का इशारा पाया—व्रज फिर पाया-जी ललचाया-धीरज आया--और शुरू हो गई--फिर एक वार—वही गुरुदेव की पुकार—

श्यामा-श्याम ! दर्शन दो-बस एक बार-हां एक वार !

उपसंहार—

व्रज रसें अपूर्व हैं इन आँखों के पात्र बना, चुसकी ले, स्वाद लो। व्रज रस, है कृष्णमय है, राधास्वरूप है।

विचित्र है यहा का शृंगार रस-माधुर्य का भंडार है। जहाँ विरह की ताप, वहीं मिलन को शीतलता की फुआर है। सब ओर जग मग आभूषण, सौंदर्य की भरमार है व्रज रस अपार है।

सब ही रस इसमे हैं। गोपी की छेड, श्याम जू का पाव पलो—टन-तो राधा जू की "प्रीतम कहा" की पुकार है।

जहा सखाओं का चुटकी लेना, वही यशोदा मय्या का लला पर राई नोन उतारना, वात्सल्यता अपार है।

जिसने डुबकी ली, इस माधुर्य के सागर में-वह न उस पार ही पहुँचा, न इस ही पार है-व्रज रस अपार है।

यह कहानी केवल 'विरह के एक कण का विस्तार है।

किसी गोपी के आचल से छलक गई थी—वह बूँद न सभाल सकी—जलते वस्त्र न फेंक सकी—न जल कर ही शांत हो सकी-विरहिनी अपनी बीती कह बैठी—।

जो सुनी—तुम्हे सुनाई—अवश्य सुनाई—सुनना ही क्या था—कहानी छोटी थी—लम्बी थी—जो भी थी—हो वास्तव मे तो केवल इतनी ही थी एक पुकार का विस्तार थी—और वह थी—

श्याम ! दर्शन दो–बस एक बार -बस एक बार।